लाल टहनी पर
अड़हुल
शान्ति सुमन

जनधर्मिता और कविताधार्मिता का एकात्म : डॉ. शिवकुमार मिश्र

गीत **शान्ति सुमन** की रचनाधर्मिता का स्व-भाव है, जिसे उन्होंने काव्याभिव्यक्ति की दीगर तमाम भंगिमाओं के बीच-शिद्दत से जिया और बचाए रखा है। यही नहीं, समय के बदले और बदलते संदर्भों में अनुभव-संवेदनों की नई ऊष्मा और नया ताप भी उन्हें दिया है। इसी नाते उनका नाम प्रगतिशील आन्दोलन के साथ आरंभ हुई जनगीतों की परंपरा को, नई सदी की दहलीज तक लाने वाले जन गीतकारों में पहली और अगली कतार का नाम है। जनधर्मिता और कविता-धर्मिता का एकात्म हैं **शान्ति सुमन** के गीत जो कविता को उसके वास्तविक आशय में जनचरित्री बनाते हैं, उसे जन की आशाओं-आकांक्षाओं से बेहतर जिन्दगी के उसके स्वप्नों तथा संघर्षों से जोड़ते हैं। **शान्ति सुमन** के गीतों में उद्‌बोधन, आवेग और एक उमंग-तरंगित मन का उत्साह भर नहीं, समय की विद्रूपताओं से उनकी सीधी मुठभेड़ और युगीन यथार्थ का वह खरा बोध भी है, जिसे जन और उसके जीवन संदर्भों के बीच से उन्होंने पाया और अर्जित किया है। गहरे और व्यापक जन-संघर्षों की धार से गुजरे ये गीत आज के विपर्यस्त समय की चपेट में आए साधारण जन के दुख-दाह, ताप-त्रास, उसकी बेबसी और लाचारी को ही शब्द और रूप नहीं देते, स्थितियों से संघर्ष कारती उसकी जिजीविषा तथा जुझारू तेवरों को भी जनधर्मी पक्षधरता की पूरी ऊर्जा के साथ रूपायित करते हैं, जिन्हें जन और जन-संघर्षों की सहभागिता में **शान्ति सुमन** ने देखा और जिया है। उनके गीतों में नर-जीवन ही नहीं, नरेतर वाह्य प्रकृति भी नर जीवन की सहभागिता में अपनी जनधर्मी भंगिमाओं की समूची सुषमा के साथ चित्रित हुई है। उनके ये गीत हमारे समय का आईना भी हैं, और उसमें एक सार्थक हस्तक्षेप भी।

नवगीतकारों की पहली पंक्ति में : डॉ. रविभूषण

हिन्दी के नवगीतकारों में डॉ. **शान्ति सुमन** का नाम बहुचर्चित और सुप्रसिद्ध है। इनके पहले गीत-संकलन 'ओ प्रतीक्षित' (1970) के पूर्व बहुत कम गीत-संकलन प्रकाशित हुए थे, जिनका संबंध नवगीत से जुड़ा। शान्ति सुमन पिछले चार दशक से गीत-रचना में निरन्तर सक्रिय हैं। वे नवगीतकारों की पहली पंक्ति में हैं और उन्हें छोड़कर नवगीत पर किया गया कोई भी विचार उचित और प्रामाणिक नहीं होगा।

हिन्दी के जिन नये गीतकारों ने समय के अनुसार अपनी गीत-रचना की जमीन बदली, उनमें **शान्ति सुमन** प्रमुख हैं। उन्होंने जनवादी गीतों की रचना की। वे एक साथ नवगीतकार और जनवादी गीतकार के रूप में लोकप्रिय हैं। उनके गीत समकालीन हिन्दी कविता के पड़ोस के भी हैं।

शान्ति सुमन ने गीत के सर्वथा भिन्न रचना-विधान में समकालीन यथार्थ की विविध छवियाँ प्रस्तुत की हैं। उनके गीतों में संवेदना और विचार की सह उपस्थिति है। उनके कई नये और अछूते बिम्ब हमारा ध्यान आकर्षित करते हैं। आकाशवाणी और दूरदर्शन के अनेक केन्द्रों से तथा अनेक स्थानों के कवि-मंचों से उन्होंने गीत-पाठ किया है।

ISBN : 978-93-86181-07-7

समीक्षार्थ

सामाजिक सरोकार के संवेदनशील - आत्मीय रचनाकार - समीक्षक श्री
को बड़े स्नेह और आदर से -

- शांति सुमन
20/12/15

डा० शांति सुमन
2, कैज़र बंग्लो, कपाली रोड
(कदमा सोनारी लिंक)
कदमा, जमशेदपुर-831005,
(झारखंड)
मो०-9430917356

लाल टहनी पर अड़हुल

शान्ति सुमन

ISBN : 978-93-86181-07-7

प्रथम संस्करण
2016

सर्वाधिकार ©
शांति सुमन

प्रकाशक
समीक्षा प्रकाशन
जे. के. मार्केट, छोटी कल्याणी,
मुजफ्फरपुर (बिहार) – 842001
फोन : 09334279957, 09905292801
e-mail : samikshaprakashan@yahoo.com
www : samikshaprakashan.blogspot.com

दिल्ली कार्यालय
आर–27, रीता ब्लॉक
विकास मार्ग, शकरपुर, दिल्ली–92

चित्र चयन
श्रेयशी वर्मा

मुद्रक
स्मिति प्रेस
217 ए, हेमसिंह बगान, साकची
जमशेदपुर : 831001
फोन : 9431180789
e-mail : kavikumar9@gmail.com

मूल्य : 250/– (दो सौ पचास रुपए) मात्र

Lal Tahani par Adhul

by Shanti Suman **Rs. 250.00**

वसंत की पहली तांबई कोंपल सी कोमल,
ग्रीष्म के जल की तरह आकर्षक,
वर्षा के मेघ की पहली बूँद की भाँति सुखद,
शरद के उजास सी सुन्दर,
शिशिर की पहली धूप सी आश्वस्तिभरी और
हेमन्त की हवा सी करुणाकुल–
जिसकी इच्छाशक्ति और जीवन–दृष्टि घर में
प्रेम, दया, ममता, सहानुभूति और मनुष्यता
की लय बुनती है –

पहचान है जिसको दीवार और चौखट के बीच बची
जगहों की, जो जानती है आँखों और सपनों के बीच की भाषा –
अपनी उसी मृगांकी पौत्री 'आंकी' –

शालीना

को

'नागकेसर हवा' सा 'लाल टहनी पर अडहुल'

अनन्तरा

इस नितान्त कोलाहल भरे समय में समाजार्थिक असुरक्षा के बीच हम अपेक्षाकृत अधिक कठिन जीवन जी रहे हैं और समय लगातार बदल रहा है। समय के इस बदलाव ने कई पूर्वाग्रहों, समस्याओं, प्रश्नों और स्पृहा के असमंजस और झंझावातों की दिशा बदल दी है। मैं नवगीत की बात करूँ तो अब बरसों पुराने प्रश्न नहीं पूछे जाते कि गीत और नवगीत में क्या अन्तर है, नवगीत की अवधारणा के पीछे कौनसी मानसिकता है। नवगीत के अवदान पर अब कोई संदेह भी नहीं जनमता और उसका लम्बा इतिहास किसी को विरोध करने का अवसर भी नहीं देता। समाज में किसी नई बात के शुरू होने पर पहले उसका विरोध ही होता है, स्वागत बाद में। नवगीत के साथ भी वैसा ही हुआ। उसकी सहज स्वाभाविक परिणति का विस्तार देखकर, उसकी अभिव्यक्ति की ऊर्जा और प्रभावी रचनात्मकता का अनुभव कर कवितावादियों के शिविर में हलचल हुई और उसकी फलश्रुति नवगीत के विरोध तक पहुँच गई। परन्तु बाढ़ के जाते ही उसकी छोड़ी हुई उपजाऊ मिट्टी पर फसल लहलहा उठती है। कवितावादियों की बहस और चारों ओर के प्रतिरोध बाढ़ के पानी की तरह ही आये थे। उनके जाते ही नवगीतकारों की गीतात्मक चेतना, अभिव्यक्ति और भी प्रकर्ष तक पहुँच गई।

संस्कृति के उदयकाल से ही गीत मनुष्य के जीवन का अंग रहा है। वह मानवीय सुख-दुख, हास-रुदन, आशा-निराशा, उत्कर्ष-अपकर्ष का अवलम्ब बना है। दिनानुदिन यह व्यक्ति और समाज दोनों के आसंग में रहा है। वस्तुतः गीत सबकाल, सब परिस्थितियों, सब मनःस्थितियों में अविच्छिन्न रूप में अविरल गति से प्रवहमान रहा है। हर गीत रचना पहले आत्मानुभूति ही होती है, सामाजिक संवेदना उसको प्रकर्ष तक पहुँचाती है। गीत ने समाज को जीने की इच्छाशक्ति दी है, उसको हीनग्रंथियों से उबारा है और निराश-हताश मन को अंधेरे से निकाल कर नया हौसला, नया उत्साह और संजीवनी दी है। इससे भी आगे बढ़कर गीत ने क्रांति की भूमिका का निर्वाह किया है और समाज को बदलने का काम भी। इस बड़े लक्ष्य के कारण गीत से नवगीत का अलगाव सहज नहीं है तो कठिन भी नहीं है।

नयी प्रवृत्ति की जमीन पर रचे नये शब्द-गठन, छन्द, लय, विम्ब-प्रतीक, कहनशैली आदि अपने नये शिल्प, विचार-अनुभव, सामाजिक सरोकार की नयी

संवेदनाओं के कारण अपने रचाव, अपनी अभिव्यक्ति और शिल्प के आत्मीयसम्प्रेषण नवगीत को अलग ही दिखाते हैं। इसमें जहाँ एक ओर व्यक्तिता की उपेक्षा नहीं हुई है, दूसरी ओर समाज और समय के सच को भी विभिन्न कोणों से उजागर किया गया है।

मार्क्स से लेकर बहुत से विद्वानों ने इस बात को बहुत बार कहा है कि कविता मनुष्यता की मातृभाषा है। इस आधार पर कहा जाता है कि यदि कविता मनुष्यता की मातृभाषा है तो गीत उसका छंद-लयाश्रित अंतर्संगीत। मनुष्य के सुख-दुख, आशा-आकांक्षाओं से लेकर मुक्ति-संघर्ष की चेतना की अभिव्यक्ति भी गीत में होती है। गीत अपने रचयिता के आत्म-संघर्ष के साथ जनता के सामाजिक मुक्ति-संघर्ष की वल्गा भी उठाता है, इसलिये उसकी क्रांतिकारी भूमिका को अनदेखा नहीं किया जा सकता। सामाजिक परिवर्तन से लेकर सभी जनान्दोलनों में गीत की अग्रणी भूमिका होती है। भारतीय स्वातंत्र्य आन्दोलन और उसके सभी अनुषंगी आन्दोलनों में गीत की इस भूमिका का निर्वहण देखा जा सकता है। डॉ. नामवर सिंह का मानना भी है कि 'गीतों ने जनमानस को बदलने में क्रांतिकारी भूमिका अदा की है।'

विद्यापति के समय से ही गीत की रचना अविरल गति से होती रही है, पर छायावाद-काल में गीत को मानक स्वरूप मिला। छायावादी कवियों ने केवल गीत नहीं लिखे, उनका एक प्रामाणिक और विश्वसनीय इतिहास भी रचा। निराला, प्रसाद, पंत, महादेवी केवल गीतकार नहीं थे, वे मजबूत कारीगर हाथ थे जिन्होंने पूर्व में रोपे गीत के पौधे को अपेक्षित नई मिट्टी-खाद, पानी देकर सींचा और उनको छतनार वृक्ष बनाया। लोगों ने गीत के गुणात्मक रचाव को देखा। उसने जनता के सुख-दुख, आशा-आकांक्षा और समस्त सामाजिक मनोरथों, स्वप्नों, दायित्वों के निर्वहण में अपने को अग्रसर किया। छायावादी गीतों की रचनात्मक भूमि ने उस समय लोगों को सुखद आश्चर्य से भर दिया। मानवीकरण अलंकार पहलीबार छायावादी गीत में आया था। प्रकृति का देखा-अनदेखा साम्राज्य इन गीतों ने घेर लिया था। राष्ट्रीय परिकल्पना और भी पुष्ट होकर इन गीतों में आई। समाजार्थिक विसंगतियाँ भी इन गीतों की रचना-दृष्टि बनकर आईं। छायावाद और छायावादोत्तर गीतों ने अंग्रेजी शासन और उससे मुक्ति की छटपटाहट को शब्द देकर अपनी रचनात्मक सार्थकता सिद्ध की। संघर्षशील आमजन की सक्रियता इन गीतों में देखी जा सकती है। प्रगतिशील धारा के गीत इस दृष्टि से अधिक जुझारू हैं।

भक्तियुग की कविता के बाद प्रगतिवादी कविता आमजन की समस्याओं,

उनके संघर्षों और व्यवस्था की विसंगतियों के प्रतिरोध में उपजे आन्दोलनों से अधिक जुड़ती है। सघर्षों को संगठित करने का काम भी अधिक गहरे स्तर पर हुआ। पर कबीर का जुझारूपन कि 'जो घर फूकै आपना चले हमारे साथ' वाला समर्पण और त्याग अपेक्षाकृत कम देखने को मिला। प्रगतिवादी कविता का आन्दोलन मूलतः समाजार्थिक और राजनैतिक था। भक्तियुग की तरह आमजन की एक-एक समस्या से जुड़ा हुआ नहीं था। कबीर, रहीम, रसखान आदि कवियों ने तो दो टूक बातें कहने के बाद भी नीतिपरक बातों से भी जनता की स्थितियों को बदलने का काम किया। यही कारण है कि उस युग के पद, गीत, दोहे आदि सभी जनता के कंठहार हो गये थे। प्रगतिवादी गीत-कविता में नागार्जुन और केदारनाथ अग्रवाल को सबसे ऊपर और अलग रखकर देखा जा सकता है। कई अर्थों में भक्तिकालीन गीतों की प्रभविष्णुता इनके गीतों में देखी जाती है। इस दौर में बाद में जयप्रकाश नारायण के जनान्दोलन ने भी गीत को एक नई त्वरा दी। एक सर्वथा नई संघर्षशील संवेदना का जन्म हुआ जो युवावर्ग को एकजुटकर आन्दोलन को नई धार देने में सम्र्थ हुई। छोटी-छोटी समस्याओं को भी उसने जमीन पर उतारा और उनके लिये गोलबन्द हुई। संवेदना-भावना और विचार के धरातल पर नयी प्रवृतियों की आहटें आने लगी थीं और समाजार्थिक संरचनाओं में एक नये बदलाव का आभास होने लगा था।

पूर्व के गीतों से नवगीत की विशाल रचना-भूमि को जितना मिला, निराला के बीजांकुर से हरियायी रचनात्मकता ने नवगीत को अधिकाधिक ऊर्जा देकर सुपरिणति के फलक तक पहुँचा दिया, पर विडम्बना यह थी कि नवगीत के नाम पर लोकप्रियता और नाम - यश अर्जित करनेवाले कुछ गीतकारों ने जान - बूझकर इस विधा का शोषण किया। अपने हाथ से अपनी पीठ ठोकने वाला ऐसा एक गीतकार नचिकेता भी है। उसने कई बार कई स्थानों पर यह लिखा है कि ''अंतराल के दूसरे अंक में रविभूषण (पाण्डेय रविभूषण प्रसाद) का वृहद् आलेख 'हिन्दी नवगीत कितनी हार, कितनी जीत' प्रकाशित हुआ जिसमें उन्होंने लक्ष्मीकान्त सरस, शीरीन भारती, कृष्ण कमलेश, शशि कमलेश, मुनीश मंदिर आदि को छद्म गीतकार कहा और राजेन्द्र प्रसाद सिंह एवं शान्तिसुमन के तत्कालीन नवगीतों पर अपनी बेहद तल्ख प्रतिक्रिया व्यक्त की थी। इसके खिलाफ राजेन्द्र प्रसाद सिंह और शान्ति सुमन ने लक्ष्मीकान्त सरस से मिलकर 'अंकन' का नवगीत विशेषांक निकाला जिसमें नवगीत पर सार्थक बहस कम, रविभूषण और नचिकेता को गाली-गलौज की भाषा में खूब खरी-खोटी सुनाई गई थी। इतने से भी मन नहीं भरा तो शान्ति सुमन ने वर्ष 1974 में 'अन्यथा' का एक मात्र अंक (नवगीत विशेषांक) तथा राजेन्द्र प्रसाद सिंह ने नवगीत से जुड़ी हुई पत्रिका

'आईना' के कई अंक निकाले। इन पत्रिकाओं का एक सार्थक अवदान यह रहा कि नवगीत विषयक जिस रचनात्मक विमर्श का आरम्भ 'अंतराल' ने किया था इसको एक नई गति मिली।" - 'कलरव' - पृ० - 13–14

पहली बात है कि नचिकेता इस बात से खुश नहीं हुआ कि उन असुविधाओं और अविकसित परिस्थितियों में भी बिहार से राजेन्द्र प्रसाद सिंह के बाद मेरा ही नवगीत संग्रह 'ओ प्रतीक्षित' (1970) प्रकाशित हुआ था। बिहार के बाहर भी वरिष्ठ नवगीतकार ठाकुर प्रसाद सिंह, चन्द्रदेव सिंह, शंभुनाथ सिंह, उमाकान्त मालवीय, रमेश रंजक के नवगीत-संग्रह ही छपे थे। सत्यनारायण आदि बड़े नवगीतकार पत्रिकाओं में छप रहे थे। उनका नवगीत-संग्रह नहीं आया था। नचिकेता नवगीत में जगह बनाने के लिये प्रयत्नशील था। नवगीत से उसको लगाव और मोह नहीं था तो उसने पहले अपना नवगीत-संग्रह क्यों प्रकाशित किया और नवगीत से प्रतिबद्ध पत्रिका 'अन्तराल' का सम्पादन क्यों किया? इसी नवगीत को प्रायोजित रूप से उससे हानि पहुँचाने का काम किया। बिना समय, परिस्थिति और जीवन-संघर्ष को जाने उसके सकारात्मक पक्षों के बदले उसकी कमियों को गिनाकर उस विधा को ठेस पहुँचाया।

इससे बड़ी बात यह है कि दूसरे गीतकारों की रचनात्मकता को आहत करते हुए नवगीत में जब वह आगे बढ़ रहा था तो उसका ध्यान ही इस बात पर नहीं था कि अपने नवगीत में वह अपनी पूँजी कम दूसरे की पूँजी अधिक लगा रहा था। आपस में गीतकारों में यह चर्चा होती रहती थी कि मेरी पंक्ति वहाँ से उड़ी है, मेरी पंक्तियां वहाँ से उड़ाई गई हैं। धैर्य का बाँध जब टूट गया तब उमाकांत मालवीय, माहेश्वर तिवारी, रमेशरंजक, बुद्धिनाथ मिश्र आदि तो बोलकर ही रह गये, पर बहुआयामी, बहुरंगी नवगीतों के समृद्ध संसार के रचनाकार जो पत्रिकाओं से लेकर काव्य-मंचों पर अपने स्वर-समोहन से गीत को जन-जीवन से जोड़ रहे थे, उसको विशाल श्रोता-पाठक वर्ग में लोकप्रिय भी बना रहे थे, यह सोम ठाकुर थे। उनकी पीड़ा इन पंक्तियों में पढ़िये, समझिए और चिन्ता कीजिये-

"बिहार के एक तुकेरे ने तो 'धर्मयुग' में प्रकाशित 'रूप तुम्हारा मन में कस्तूरी बो गया', नवगीत की एक पदावली को ही उड़ाकर उसे अपनी रचना में प्रयोग करके अपने संकलन का नाम ही मेरी पंक्ति से उठाकर ज्यों का त्यों बड़ी निर्लज्जता के साथ रख लिया। ऐसा ही उसने माहेश्वर तिवारी की रचनाओं से भी वाक्यांश ज्यों के त्यों उड़ा लिये। ऐसे कोलाज-कर्म द्वारा अर्जित छद्म मौलिकता की जितनी प्रशंसा की जाय, कम है"-सोम ठाकुर 'एक ऋचा पाटल को' पृ. 102, ने जिस गीत की

पदावली को उड़ाने की बात की है उस पूरे गीत को प्रस्तुत करना संभव नहीं है, पर सम्बद्ध पदावली इस प्रकार है –

एक पर्त्त झन्नाहट की फैली
अंग-अंग चिपक गई नजरें
एक पोर भर चेहरा छूकर यह तर्जनी
ले आयी आदमकद खबरें
तकिये पर टाँककर गुलाबों के संस्मरण
चाँदनी-विंधा बादल
कन्धे पर सो गया
मन जाने क्या से क्या हो गया

–रूप तुम्हारा : 'एक ऋचा पाटल को' पृ. 3/गीत का रचना काल–1966

उपर्युक्त उद्धरणों में कई बातें एक साथ उजागर होती हैं। दूसरी बात यह है कि रविभूषण के साथ अपना नाम जोड़कर वह अपने को गौरवान्वित ही नहीं, सशक्त भी समझने लगता है। सच तो यह है कि कबतक रविभूषण का नाम लेकर वह 'अंतराल' को भुनाता रहेगा। जिस रविभूषण को वह बार-बार मेरे विरुद्ध खड़ा करता है, आज तक उस छद्म से उसका कुछ बना नहीं। मेरे गीतों के बारे में रविभूषण ने जो लिखा है उसको उसने अपनी आँखों से बार-बार पढ़ा होगा। फिर भी उसकी मानसिक दशा नहीं बदली। डॉ. रविभूषण ने लिखा है–"हिन्दी के नवगीतकारों में शान्ति सुमन का नाम बहुचर्चित और सुप्रसिद्ध है। इनके पहले गीत-संकलन 'ओ प्रतीक्षित' (1970) के पूर्व बहुत कम गीत-संकलन प्रकाशित हुए थे, जिनका सम्बंध नवगीत से जुड़ा। शान्ति सुमन पिछले चार दशक से गीत रचना में निरन्तर सक्रिय हैं। वे नवगीतकारों की पहली पंक्ति में हैं और उन्हें छोड़कर नवगीतपर किया गया कोई भी विचार उचित और प्रमाणिक नहीं होगा।"– 'शान्ति सुमन की गीत-रचना और दृष्टि' – पृ. 40 उन्होंने मेरे गीतों के पक्ष में और भी बहुत सी बातें लिखी हैं, पर मैं समझती हूँ कि उपयुक्त कुछ पंक्तियाँ ही नचिकेता की मानसिक दशाको बदलने के लिए पर्याप्त हैं।

डॉ. रविभूषण एक विद्वान आलोचक हैं। अपने साथ किसी गाली-गलौज में उनको शामिल करना नचिकेता की गिरती हुई मानसिक दशा का ही परिचायक है। हिन्दी गीत-नवगीत के पुराने-नये सब गीतकार जानते हैं कि अपने को प्रचारित करने

और जिस किसी भी तरीके से लोकप्रियता उगाहने के सारे षड़यंत्रों के इस्तेमाल करने की महारत उसको हासिल है। अपने ही आइने में जब वह दूसरों को देखता है तो अपना ही छद्म, अपना ही कपट उसको सर्वत्र दीखता है। जब दूसरों की रचना से ही काम चलाना हो तो वैसा गीतकार केवल अपने लोभ-लाभ और साजिशों के बारे में ही सोचता है। मेरे द्वारा सम्पादित 'अन्यथा' का अंक उपलब्ध है। उसको देखने के बाद पता चल जाएगा कि नवगीत की रचचित्री होने के कारण इस विद्या के प्रति अपनी निष्ठा से ही मैंने 'अन्यथा' का सम्पादन किया था। उसकी कितनी प्रशंसा नवगीतकारों और समीक्षकों ने की थी। दूसरे की प्रशंसा तो कुछ लोगों से सुनी ही नहीं जाती। नवगीत की धारा कभी अवरुद्ध नहीं हुई पर नचिकेता को लगा और अभी भी लगता है कि "इसने (अर्थात 'अन्तराल' ने) आठवें दशक के आरम्भ में ही गीत-चर्चा की अवरुद्ध धारा को नयी शक्ति और ऊर्जा के साथ गतिशील ही नहीं किया, बल्कि नवगीत के अगले विकास जनगीत या जनवादी गीत के उद्भव की पड़ताल और खोजबीन भी की"- 'कलरव' पृ. 13 'अंतराल' का प्रकाशन सहज-स्वाभाविक था। नवगीत गीत की सशक्त परिणति बनकर विस्तार ले चुका था। ऐसे में उससे प्रतिबद्ध कोई भी पत्रिका उसके प्रकर्ष की बात करती और उसके अगले सोपान की यात्रा को रेखांकित करती, परन्तु जब नचिकेता को श्रेय को अपने हिस्से में लेने की जल्दबाजी हो रही थी तो किसी गंभीर और सार्थक रचनाकार ने उसकी इस छोटी राजनीति को सुना भी नहीं।

पहले तो नचिकेता ने नवगीत की प्रशंसा में नये-नये कशीदे काढ़ने का काम किया और जब देखा कि इस विधा में उसकी कोई जगह ही नहीं है, उसकी नवगीत रचना में कोई नवगीतात्मकता ही नहीं है, कोई समीक्षक उसके नवगीत की बात नहीं करता तो उसने इसको गाली देना शुरू किया। जो उसकी समझ में नहीं आया उसको उसने नवगीत का अवगुण मान लिया। उसको पता भी नहीं चला कि नवगीत के जिस विरोध के लिए उसने इतना हंगामा किया, कवितावादियों का विरोध अभद्र शब्दों में किया - इस सूची में डॉ. नामवर सिंह से लेकर डॉ. केदारनाथ सिंह तक के नाम हैं, उसने डॉ. मैनेजर पाण्डेय का भी अनादर किया जो गीत के प्रबल और प्रखर पक्षधर हैं, उसी नवगीत का विरोध उसने आगे बढ़कर करना शुरु किया। उसने लिखा कि 'नवगीत के पतनशील जीवन-मूल्यों और यथास्थितिवादी रवैये से अपना विच्छेदकर.... रचनात्मक रिश्ता जोड़ा।' जहाँ तक जनपक्षधरता की बात है तो सब जानते हैं कि नवगीत के उतरार्द्ध में यह संकेत प्रखर रूप से आने लगा था। रमेश रंजक शुरू से ही जनवादी गीतकार नहीं थे, उनके पहले गीतसंग्रह 'विहाग' में जनवादिता के स्पष्ट चित्र मिलते हैं। माहेश्वर तिवारी के पिछले गीत संग्रहों में जनवाद पूरी सहजता से आया है। यह

दूसरी बात है कि उन गीतों में हथौड़ा नहीं बजाया गया है। नचिकेता के गीतों की तरह उनसे ठन - ठन की आवाज नहीं आई है । रमेश रंजक ने उसकी तरह सपनों के मधुमास के खून नहीं बहाये हैं। श्रमजीवी संघर्षरत जन के जीवन-यथार्थ पर लिखे बुद्धिनाथ मिश्र के कितने ही गीतों ने इतिहास में जगह बनाई है और बिना किसी नारा और क्रांति का नाम लिये उनके गीतों के रचाव में सामाजिक परिवर्तन की आहट सुनाई पड़ती है। व्यवस्था से जर्जर हुए लोग बुद्धिनाथ के ऐसे गीतों में समस्त विसंगतियों के विरुद्ध खड़े दीखते हैं। जनवादकी मुहर लगाये कितने ही गीतकारों से अधिक जीवन्त और सशक्त गीत सत्यनारायण ने लिखे हैं। उनमें गीतों की ऊपरी सतह जितनी शांत लगती है, भीतर में उतनी ही आग और प्रतिरोध भरे हुए हैं। यह उनका शिल्प है कि उनके गीत दूसरों की तरह वाचाल नहीं हैं, क्रांति का नाम लेकर चिल्लाते नहीं हैं, पर अपने प्रभाव से राजनीतिक चेतना के कारण आम जनकी मानसिकता, कार्यशैली और दिनचर्या में जगह बना लेते हैं।

पता नहीं कहाँ से जान लेता है कोई कि बिना हँसुवा-हथौड़ा के जनवादी गीत नहीं लिखा जा सकता। वैज्ञानिक सोचवाले संवेदनशील गीतकार और आलोचकों को पता है कि जनवादिता और क्रांति विचार से आती है, हँसुआ-हथौड़ा के बजाने से नहीं। शब्दों से क्रांति करने से कभी क्रांति नहीं आई। शब्दों में क्रान्ति को सजाता हुआ जनवाद का प्रवक्ता गीतकार थकने लगता है तो उसको स्थगित कर प्रेम-गीत लिखने लगता है। सारे भूले हुए, छूट गये रोमान शब्दों में झिलमिलाने लगते हैं। इसको भी वह अपना करिश्मा ही समझता है। सच तो यह है कि इतिहास अपने सूप से फटककर शाश्वत और दीर्घायु गीतों से तात्कालिक गीतों को भूसी की तरह अलग कर देता है। प्रवहमान गीत जब कबीर-तुलसी से बँधे नहीं रहकर समय के साथ उनकी कालजयिता को लेकर आगे बढ़ गया तब आज भी यही होगा। समय की धार में सारे निरर्थक बहते जायेंगे और सार्थक अगली यात्रा पर निकलते रहेंगे। गीत की यात्रा कभी रुकी नहीं है। सार्थक गीत ही आनेवाले समय की मानसिकता में नये क्रांतिकारी विचार भरते रहेंगे। क्रांतिकारी विचार कभी अप्रासंगिक अथवा बासी नहीं होते। व्यवस्था भी समय के साथ चलती रहती है। उसकी विसंगतियों के किस्से कभी कम नहीं होते। ऐसे असमाप्त इन्द्रजाल को ऐसे विचार और ऐसी संवेदनायें ही सावधान करती रहेंगी।

जनवादी गीत नवगीत का ही अगला पड़ाव है। नवगीत सही अर्थ में आन्दोलन नहीं था। वह गीत की सशक्त परिणति था। जनवादी गीत को भी आन्दोलन नहीं कहना चाहिए क्योंकि आन्दोलन से जो काव्यप्रवृत्ति प्राप्त होती है, आन्दोलन के समाप्त होने

पर उसकी प्रासंगिकता कम होने लगती है। जनवादी गीत समय के हाथों में मशाल की तरह है। उसने विसंगत व्यवस्था में जीते हुए आमजन को रास्ता दिखाया है। आज किसानों, युवा वर्ग की आत्महत्याओं को देखते हुए कहा जा सकता है कि जनवादी गीत इन हत्याओं की भीतरी पड़ताल तक पहुँचते हैं और हम व्यवस्था के मकड़जाल को बहुत साफ तौर पर देख सकते हैं।

जब मेरे गीतों का विरोधकर नचिकेता को कुछ हासिल नहीं हुआ तब उसको मेरी रचनादृष्टि में विश्वास बढ़ गया। कई स्थानों पर उसने मेरी सामाजिक चेतना और गीतों में नया सौन्दर्यशास्त्र रचने की बात भी की है। प्रमाण के लिये 'कलरव' के इस आलेख में ही उसने पुनः विस्तार से लिखा है कि 'समकालीन हिन्दी गीत की विकास-यात्रा को आगे बढ़ाने और गतिशील रखने में बिहार की जिन गीतकारों का अप्रतिम योगदान है, उनमें पहला नाम शान्तिसुमन का है। शान्तिसुमन, वस्तुतः एक ऐसी गीत-कवयित्री हैं जिन्हें कवि सम्मेलन के मंचों और गंभीर साहित्य चर्चाओं में समान रूप से ख्याति हासिल हुई है। नवगीत से अपनी गीत यात्रा की शुरुआत करनेवाली शान्तिसुमन को जनगीत के पुरस्कर्ता गीतकार होने का गौरव प्राप्त है। 'ओ प्रतीक्षित', 'परछाईं टूटती', 'मौसम हुआ कबीर',, एक सूर्य रोटी पर', 'धूपरंगे दिन', जैसे उनके लगभग एक दर्जन नवगीत और जनगीतों के संग्रह प्रकाशित हैं। उनके गीतों की बनावट और बुनावट की कलात्मकता पर विचार करते हुए मैनेजर पांडेय इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि 'शान्तिसुमन के गीतों का महत्व उनके विशिष्ट रचाव में हैं। लगता है कि लोकगीत की आत्मा नई देह पा गई है या कि नई चेतना लोकगीत की काया में समा गई है' और शिव कुमार मिश्र मानते हैं कि उनके गीतों से होकर गुजरना 'जनधर्मी अनुभव-संवेदनों की एक बहुरंगी, बहुआयामी, बेहद समृद्ध दुनिया से होकर गुजरना है, साधारण में असाधारण के हाशिए की जिन्दगी जीते हुए छोटे लोगों के जीवन-संदर्भों में महाकाव्य के वृत्तान्त पढ़ना है। स्वानुभूति, सर्जनात्मक कल्पना तथा गहरी मानवीय चिन्ता के एकात्म से उपजे ये गीत अपने कथ्य में जितने पारदर्शी हैं, उसके निहितार्थों में उतने ही सारगर्भित भी।' नचिकेता के शब्दों में 'शान्तिसुमन के ये गीत वास्तव में गुलाब की पंखुड़ियों पर लिखी अग्नि-शलाका हैं। शबनम की लिपि में लिखी क्रांति की कारिकाएँ हैं और हिन्दी जनगीत-रचना के क्षेत्र में शान्तिसुमन, शायद पहला स्त्रीगीतकार हैं, जिनकी रचनाएँ (गीत) संघर्षशील जनसंघर्षों में

जुझारू मेहनतकश अवाम के द्वारा गाये गये हैं। मुझे यह मानने में कोई संकोच नहीं है कि शान्ति सुमन का गीतकार हिन्दी में महादेवी वर्मा के बाद का सबसे बड़ा स्त्री-गीतकार हैं और पुरुष गीतकारों में भी अग्रणी।'

नवगीत पर जब भी बात होगी तो समकालीन गीत-कविता के महान आलोचक डॉ. शिवकुमार मिश्र के इस विचार को ध्यान में रखने की जरुरत है जिसमें उन्होंने 'सम्यक' - 2009 में नवगीत और उसका युगबोध' की समीक्षा में नवगीत के बारे में स्पष्ट कहा है कि 'अब नवगीत भावुक मन की मध्ययुगीन बोध की चीज नहीं है, बल्कि वह समय की सारी आक्रामकता तथा समय की सारी विसंगतियों, विद्रूपताओं से उसी तरह मुठभेड़ कर रहा है जिस तरह आधुनिक कही और मानी जानेवाली गद्यकविता कर रही है। नवगीत के रचना-शिल्प में भाषा, अलंकार छन्द आदि समूचे रचना-विधान में बदलाव आया है।' इसी प्रकार 'समग्र चेतना के 2012 में प्रकाशित 'नवगीत के नये प्रतिमान' शीर्षक विशेषांक में डॉ. नामवर सिंह ने जिन्होंने पहले सीधे रूप में नवगीत पर बात नहीं की थी, लिखा कि 'नवगीत ने जनभावना और जनसमस्याओं को अपनी अंतर्वस्तु के रूप में स्वीकार किया है। इसलिये वह जनसंवादधर्मिता की कसौटी पर खरा उतर सका है। समय की चुनौती के अनुसार यदि गीत की अंतर्वस्तु बदलती है तो उसका सुर और 'कहन' की भंगिमा भी बदलती है। नवगीत इसी बदलाव का सुपरिणाम है।'

मैं नवगीत के भविष्य के प्रति आशान्वित हूँ। यदि कुछ लोग गीत से लगाव नहीं रखते तो वे उसी तरह हैं जिस तरह पेड़ से कुछ पत्तों के गिर जाने से पेड़ खाली नहीं होता। समय बदलेगा, समाजार्थिक परिस्थितियाँ बदलेंगी और वे लोग भी गीत की राजनीतिक चेतना, सामयिक बोध तथा व्यवस्था की विसंगतियों के प्रति प्रतिरोध और आमजन के जीवन-यथार्थ के प्रति अनुरक्ति रखने के कारण गीत से जुड़ेंगे और महसूस करेंगे कि मनुष्यता को बचाने के लिये गीत को बचाकर रखना बेहद जरूरी है।

2015 में मेरा नवगीत-संग्रह 'लय हरापन की' प्रकाशित हुआ था। उसके बाद मेरा यह चौदहवाँ गीत संग्रह '**लाल टहनी पर अड़हुल**' प्रकाशित हो रहा है। यह अनुभव और भी रचनाकार को होगा और मुझको इस संग्रह की पाण्डुलिपि बनाते समय प्रखर रूप में हुआ कि साहित्य का प्रसार बहुत दूर तक है जिसमें मीडिया भी एक कारक होता है, पर वह साहित्य को रोकने का काम नहीं कर सकता क्योंकि साहित्य और उसके काम में बहुत अन्तर है। बहुत अर्थों में दोनो के लक्ष्य भी भिन्न

हैं। टेलिविजन पर देखने पर स्पष्ट लगता है कि उसमें मनोरंजन करने वाला साहित्य ही अधिक है। इसलिये मीडिया से साहित्य और विशेषकर गीत-कविता को कोई हानि नहीं हो सकती। गाँवों को जानने के लिए प्रेमचंद और शहर को जानने के लिए कमलेश्वर आदि समान्तर कथा लेखकों के साहित्य को पढ़ना बहुत जरूरी है। गीतकारों में ऐसी बात नहीं है। कोई भी गीतकार-नवगीत या जनवादी गीत में ऐसा नहीं है जिसने शहर को लिखते हुए गाँव को नहीं लिखा है। वस्तुतः गीतकार गाँव और शहर दोनों के जीवन-यथार्थ, उनकी विसंगतियों, सुख-दुख, आशा-निराशा आदि को दृष्टि में रखते हैं। मध्यवर्ग से आने के कारण उन सबका संबंध गाँवों से होता है और जीवन-यापन के लिये शहर आकर वे गाँव से और भी अधिक लगाव महसूस करते हैं। गाँव और शहर दोनो के किसानों, मजदूरों, निम्न मध्यवर्ग को और विपन्न वर्ग के जन-संघर्ष को गीतों में प्रखर अभिव्यक्ति मिली है। आमजन की तकलीफों, परेशानियों और कठिनाइयों को गीत ने बड़ी ईमानदारी से व्यक्त किया है। मीडिया जितना कहता है, उतना ही जानने से जनता को पूरी सूचना नहीं मिलती। साहित्य विशेषकर गीतों का प्रभाव दूरगामी होता है। सार्थक गीतों की भूमिका बड़ी होती है। वह मित्र ही नहीं, शिक्षक भी होता है। गीतकारों को मीडिया का आतंक नहीं होता। मीडिया के पास न तो सोचने का समय होता है, न देने के लिये दिशा। अपने देश, समाज संस्कृति और इतिहास को जानने का विवेक गीत से ही मिलता है। स्वतंत्रता के संग्राम में रामप्रसाद विस्मिल के गीत की पंक्तियाँ पढ़कर बलिदानी युवा सिर से कफन बांधकर निकल पड़े थे। आम आदमी के दुख-दर्द गीत में ही सही अर्थों में व्यक्त होते रहे हैं। समय जितना भी बदल जाये, गीत ही जन-संघर्षों को सामने लाने का कार्य करता रहेगा। अस्तु....

मेरी संवेदना की नमी बची हुई है, मैं लिख रही हूँ तो साफ समझ में आता है कि मेरा छोटा परिवार मेरे लिये सकारात्मक है। परिवार और कुछ मित्र मेरा हौसला बढ़ाते हैं। मेरे परिवार का नया वर्ग मेरी पौत्री शालीना वर्मा इन्जीनियरिंग और एम. बी.ए. करने के बाद दिल्ली में और मेरा पौत्र ईशान वर्मा हैदराबाद में कार्यरत है। मेरा नाती अर्पूव वर्मा इंजीनियर बनकर अपनी आजीविका निभा रहा है। मेरी नातिन श्रेयसी वर्मा क्लैट की पढ़ाई कर रही है। इनका सान्निध्य, इनका स्नेह मेरी इच्छाशक्ति का स्रोत है। पुत्र अरविन्द, पुत्रवधू डॉ. विशाखा वर्मा तथा पुत्री डॉ. चेतना वर्मा की संवेदनाओं से बुना हुआ हमारा घर आश्वस्ति और लगाव से भरा है।

मेरी पुत्री चेतना वर्मा के तीन कविता संग्रह - 'सप्तस्वर' - सहकविता संग्रह 2002, 'उस दिन का इन्तजार' - 2007 और 'गीली मिट्टी है दुख' - 2014 प्रकाशित

हैं। ज्ञानेन्द्र पति, मदन कश्यप और डॉ. रेवती रमण ने उसकी कविताओं पर लिखते हुए उसको समकालीन हिन्दी कविता का समर्थ हस्ताक्षर माना है। ज्ञानेन्द्र पति ने लिखा - 'ये कवितायें निराला के 'नये पत्ते' की कविताओं से अपना रिश्ता जोड़ती हैं, अपने समय को वाँचती हुई भी।' मदन कश्यप ने इसको 'कविता की दुर्लभ उपलब्धि' कहा है तथा डॉ. रेवती रमण के शब्दों में 'चेतना वर्मा की ऊर्ध्वमुखी चेतना-यात्रा का यह संग्रह एक पड़ाव है। इसमें प्रकृति, लोकजीवन और वात्सल्य की आभा मिलकर कविता का एक पवित्र संसार रचते हैं।'

गीत की तीन अन्तराओं की तरह अपने घर-परिवार को स्नेह देती शुभाकांक्षाओं से भरी हुई आप सबके लिये आत्मीय आदर के साथ

5 जून 2016 - रविवार (चेतना का जन्मदिन)

शांति सुमन

पता : 2, कैजरबंगला, कपाली रोड,
कदमा (कदमा-सोनारी लिंक),
जमशेदपुर- 831005 (झारखण्ड)
मो.- 9430917356

अनुक्रमण

1	कुछ सगुन सा	21
2	टूटे पुल से	23
3	धूप दिन की	24
4	टूटी छत से	26
5	नदी जनमती है	28
6	आसिनी उजास	29
7	नदी के गाँव से	30
8	काँपते हैं दुख	32
9	पीत कनेरों में	34
10	थाल में पीतल की	36
11	खुशी पहनकर निकली	38
12	नदी अकेली	40
13	कन्धे पर बेटी	42
14	बाँसों के पत्ते	44

15 छोटी एक किरन 46
16 खुशबू पर पहरे 48
17 शहर की आँखें 50
18 दिन के कागज पर 52
19 आज का दिन 54
20 अपनापन मन का 56
21 बहुत लड़े हैं 58
22 रंग भरे कचनार 60
23 धान के बोझों सी 61
24 खुशबू नदी नहाती 63
25 ताप दुपहर का 65
26 संगी गीत नये 67
27 खुशियों से बाहर 69
28 कभी चैन से 71
29 समझने की भाषा 73
30 गले मिली छाँह 75
31 खोई हवा कहाँ 77
32 लहरें 'भटियाली' 79
33 तितली की रंगत 81
34 हरे–भरे दिन 83
35 सहज सपनों में 84
36 माँ की आँखें 85
37 रंग बदलता 87

38 बँटते पानी में 89
39 लहठीवाली अरुणाई 91
40 नदी की लय में 93
41 जुगनुओंवाली पालकी 94
42 मरुथल में जल 96
43 बच्चे बागों में 98
44 खुशियों का पानी 100
45 अपना घर 102
46 अंकुर दिन का 103
47 क्रोशिया काढ़ती हवा 105
48 मीठी बातों की 107
49 पेड़ों की टहनी 109
50 शंखों सी चमकीली 111
51 घुली लयों सी 113
52 शंख बजा जैसे 115
53 सपनों का बीज 117
54 दुखता अलग रहना 118
55 रोपें धान कहाँ 121
56 फागुन रंग रंगे 122
57 नदी हुई बेचैन 124
58 मिल जाएगी रंगीनी 126
59 कोई सुख आधा 127
60 मासूम बचपने में 129

61 ओसों की टिकली 131
62 घर में ही बाजार 133
63 रंग बादल के 135
64 फूले इन्द्रकमल पर 137
65 दुनिया भर की बातें 138
66 सीखे फूलों से 140
67 सुजनी को धूपों ने 142
68 कच्चे दावे 144
69 फूलों के आगे 146
70 हथेली में धूप 148
71 मन की खुशियाँ 149
72 केवल खुशी नहीं 151
73 दुपहर थी इसीलिये 153
74 घर की रंगोली 155
75 बरस रहे बादल से 157
76 मामूली से दिन 159
77 छत से छाये पिता 161
78 लाल टहनी पर अड़हुल 163

कुछ सगुन सा

एक बोल मीठा जो तुमने कहा
टेसू के फूलों में
रंग आ गये

लोट-लोट जाती हैं
धानों की बालियाँ
उतरे हैं झूले हवाओं के
पहनकर मंगटीका
नाची हरियालियाँ
मुसकियाँ भरे मुख दिशाओं के

पोर-पोर विंधते जो मन ने सहा
पलकों के झालर में
गीत आ गये

साँसों को रोक उड़ा
हवाओं में तिनका
लगती रिश्तों की गंध उतरने
शाखों में धूपों के
कुछ सगुन सा खनका
मन में लगती यादें गमकने

धूप-दिन आँखों में भींगकर बहा

खेतों के मेड़ों में
जंल समा गये

पीड़ा के जो माने
जानते बरसों से
सावन ने बहुत उसको गाया
सूखे से मौसम में
डहकते हंसों से
मारूविहाग किसने सुनाया

अपने सपनों की नींदों में नहा
दिन कल अधजागे से
पल थमा गये।

●

30 / 08 / '14

टूटे पुल से

हम टूटे पुल से हुए
हो गये भीतर तक सूने

नदी एक वहाँ बहती थी
बहुत खूबसूरत सी
सेमल के फूल में अब तो
उड़ती हुई रुई सी

हम छोटे घर से हुए
बाढ़ में पाये दुख दूने

रखकर जेब में भावों को
बाजार तलक दौड़े
दौड़ लगाते थे गाँव में
वे सूरज के घोड़े

हम माँ के दुख से हुए
छान से लग जाते चूने

लगे चिड़ियों के डैनों से
उड़ते बादल दिन के
दिखते नील पंखुड़ियों में
कब के सूखे तिनके

हम उड़ते डैने हुए
लगते सीवान को छूने ।

2/8/'14

धूप दिन की

सीढ़ियाँ चढ़ने लगी है
धूप दिन की
हरियाने लगी दीवार
की लतरें

हवाओं के पुल बनाकर
दौड़ती रहती तितलियाँ
गंध के मेले जगाती
लाल-पीली-सी पँखुड़ियाँ

चिट्ठयाँ लिखने लगी है
किरन दिन की
जल में चाँदनी के धुली
ये सतरें

गमकती रातरानी से
सुरीले गीत अँजुरी के
भोर तक जगते रहे हैं
सुहाने बोल कंजरी के

गंध सी झरने लगी है
हवा दिन की

जैसे उफनती सी नदी
में लहरें
रूठी छोटी बेटी सी
खोले बन्द करे आँखें
इतराने लगती चिड़िया
जल में डुबा रही पाँखें

खिड़कियाँ पढ़ने लगी हैं
गंध दिन की
थल कमल पर कोई गीत
सा उतरे

●

19 / 12 / '14

टूटी छत से

दुख ने दुख को दिया निमंत्रण
सुख घर ले आया
बारिश में भी टूटी छत से
मेघ बहुत भाया

रात चौपहर बीत गयी
हमने उठ चादर तानी
हँस-हँस विदा हुई बूँदें
थीं कितनी वे अनजानी

पहला प्रेमी आसमान का
वह पहला तारा
या दीखे बच्चों को जैसे
बादल की छाया

कैसे होता दिन सोना
और रात यह चाँदी की
हमने तो बस देखा है
दुपहर को भी आँधी की

हँसती है जैसे धूप हँसे
चुप जैसे छाया

ओढ़े नील देह बदली की
नीलम की माया

अभी बरसकर भाग गये
धूप रखे अंगोछे में
बादल अपने पाहुन से
पड़ ही जाते धोखे में

दिन झरे हैं हरसिंगार के
आसिन फिर आया
सोने की नावों पर बैठी
बदली ने गाया ।

●

11 / 12 / '15

नदी जनमती है

पार किनारों के बहती है धारा जल की
नदी उफनती है

लिये प्रतीक्षा आँखों में
सिर ऊपर कर शैवाल
ताकने लगती चिड़ियायें
बेचैन दीखता ताल

छूटी कोई हरियाली दिखती है हलकी
नदी पहनती है

आँखों की दुपहर में रहे
बैठते साँसों के रिन
पिघलते लाहों के घर में
झुलसते हैं कितने दिन

कभी न मन से जिसको गा पाये उस पल की
नदी न सुनती है
आये जब भींगते सपने
थी खड़ी रात की देह
सीढ़ियों की उन धूपों में
खोज लिए दुख ने गेह
खेत जब पी जाते खुशी गाँवों के कल की
नदी जनमती है

●

02/09/'14

आसिनी उजास

अनभीगी सी रही टहनियाँ
बरसा था तो बादल

यादों में जाने कितने
सरसों के खेत दिखे
छोटे-छोटे खत जैसे
कुछ फूल समेत लिखे

अनबोली सी रही पँखुड़ियाँ
दहका था तो मादल

भादो की रातों में भी
आसिनी उजास लगे
दूरागत वंशी की धुन
मन में फिर कहीं जगे

समय नदी की बना लहरियाँ
बहता आगे कल-कल

गाया-जिया गाँव अपना
गाँव में हँसी सुख की
नाची सुख में दो आँखें
आँखें सुर-लय दुख की

चमक रहीं जल-बीच मछलियाँ
झहर रहे जल पर जल ।

04/11/'14

नदी के गाँव से

आँखें तुम्हारी नींद में गाती हुई
तुम हँसी के गाँव से आई हुई लगती

बारिश का पहला सोंधापन
भींगी खुशबू खेतों की
पैरों के नीचे की मिट्टी
पीड़ा कहती रेतों की

हथेली की लकीरों से बाँधती हुई
तुम खुशी के गाँव से आई हुई लगती

कोई बड़ा सुकून बाँधकर
घर ले आती रोज बया
यादों में खो जाती तितली
दिन हो जाता कहीं नया

हवा छतों की लगती गुनगुनाती हुई
तुम नदी के गांव से आई हुई लगती

पहचान कभी बन जाते वे
कितने ही पहर सुखों के
ऐसा होता जब आते दिन
सयाने उतने दुखों के

फूल-पातों की शिंजिनी बजाती हुई
तुम इमन के गाँव से आई हुई लगती ।

●

04 / 07 / '15

काँपते हैं दुख

इन दिनों गाँव में मेरे
हवा आती झरने की

पोखरों में कमल
अब नहीं दिखते
किनारे पर पेड़
खत नहीं लिखते
काँपते हैं दुख
कनेरों के हवा में
अड़हुलों के पते
पर नहीं मिलते

धधक फैली पलासों में
खाती कसम मरने की

धूप खुलकर दुपहरी
की नहाती
सपने में हथेली
से छू जाती
चमकती हैं पन्नियों
सी आँखें
दौड़ लगाती कोसों
घूम आती

द्वार जगते केवड़े की
जिद खिड़कियाँ बनने की

डाकिये सी लगी
धूल गाँवों में
बाँधे फागुन की
पहुँच पाँवों में
उड़ने के पहले
रुई को दीखा
भरा हुआ पानी
बँधी नावों में

साँस लेती आस मन में
अलिखे गीत लिखने की ।

●

7/9/'14

पीत कनेरों में

दुख ने ही जोड़ा था मुझको
तुमसे, घर से
फिर तो मिलते गये सभी से
इनसे, उनसे

राह ढूँढ़ लाये हम
घने अंधेरों में
रहते खोजते गीत
पीत कनेरों में

कभी उतार न पाये दुख को
अपने सिर से

अपना ही घर लगता
हो चीज परायी
रंगहीन लगे फूल
सूनी अमराई

हँसने-गाने का मन जैसे
उखड़ा जड़ से

ढूँढ़ रहे कब से हम
कली गंध वाली
नभ में उड़ने वाली
मन की खुशहाली

फूलों जैसा मन रखने के
बीते अरसे ।

●

18 / 07 / '15

थाल में पीतल की

दिये कपूरी जले थाल में पीतल की
पहला वेतन लेकर भैया घर आये

माँ के लिये मुलायम कंबल
बाबूजी का उजला कुरता
छोटी के पाँवों का नूपुर
उसकी माँ का यह मँगटीका

याद रही छानें सोये में भी घर की
नहीं चाहता भैया अब दुख गहराये

कभी नहीं भूली वे सुबहें
गाँव में उस मधुश्रावणी की
पान-मखान लाल धोती में
बँधी हुई कला मधुबनी की

गाती गीत चमेली सातों सुर लहके
बाली में धानों की सपने अँखुवाये

सीढ़ियाँ उतरते आफिस की
सुनते फाइल की सब घातें

कागज पर लिखकर रखता है
बाबा की कही हुई बातें

सिर पर चढ़कर नाचे दशमी की खुशियाँ
शहर नहीं आये तो गाँव शहर जाये ।

●

20 / 12 / '14

खुशी पहनकर निकली

नन्हीं कली उगी है
फूलों के घर में
खुशी पहनकर निकली
हवा बगानों में

उमग रही धूपों में
ओढ़े पुरइन की हरियाली
नाच रही हैं लहरें
जल में उजले झूमरवाली

रोशनियों की चादर
बिछी मकानों में

गठरी बांधे सोईं
चिड़ियायें पिछली यादों की
रिश्तों की सौगातें
पीढ़ी दर पीढ़ी वादों की

है नींद फँसी जैसे
नयी थकानों में

झूठ कितना या सही
न दीखता उसकी बातों में

उमगता हो जिस तरह
बाढ़ संग पानी रातों में

छिपती हो नहीं खुशी
कहीं उड़ानों में ।

●

16 / 05 / '15

नदी अकेली

सोयी टहनी के उड़ते केश हवा में
ऊँघ रही तितली कन्धों पर फूलों के

लगी हुई है धूप सुबह से
जाने कितने काम
आँख नहीं लगती है, होता
नहीं तनिक आराम

गुजरी है बचपन से अब तक उमर अभावों में
रंग नहायी खुशबू हिलती संग झूलों के

छोटी बया दीखती जैसे
मन की बहुत बड़ी
रुकी हुई पाँतों में जैसे
लगती है बारह खड़ी

बच्चों के सपने कागज की नावों में
राह रोककर खड़े पाँव हैं शूलों के

बाँध बनाये हैं जिसने
जिसने हैं किले जड़े
उन हाथों ने ही मौसम के
चेहरे नये गढ़े

नये रंग भरे हैं उसने जुही-जवाओं में
दिखती नदी अकेली है बिन कूलों के।

●

03 / 07 / '15

कन्धे पर बेटी

कंधे पर बैठी है बेटी
हाथ में लम्बा झोला
धीरे-धीरे बढ़ा जा रहा
रामचरित है गोला

लेगा पाँच किलो गेहूँ
कल जाएगा पिसवाने
दाल थोड़ी सस्ती मसूर
की नमक-तेल ले आने

देखे गरम जलेबी छनती
मन उसका भी डोला

एक जलेबी उसने तो
रख ली जैसे चोरी से
देगा घर जाकर उसको
बेहद मान-मनोरी से

भात याद में उतरा घर का
मन जैसे कुछ बोला

मेला तो हर साल लगा
नहीं कभी भी वह आई
घर-चूल्हा-चौका-बरतन-
वासन में रही समाई

ईंट रंग की साड़ी लूंगा
चाहेंगे जब मौला ।

●

23 / 12 / '14

बाँसों के पत्ते

घर में हँसती छोटी बेटी
बाग हँसे कचनार

छोटे काका ने जमीन वह
पिछवाड़े की बेची
नीबू की डाली पर मैना
चहकी गुड़िया जैसी

बाँसों के पत्ते हिलते हैं
दिखते हैं सुकुमार

बाबूजी तो अब दिन-दिन भर
काफी खुश दिखते से
बात पुरानी नयी डायरी
में हरदम लिखते वे

'भानसघर' में बजते माँ की
चूड़ी के झनकार

तुलसी वाली चाय इन दिनों
सुख देती सरदी में

लगता है घर में इन्द्रकमल
खिल जाता परती में

खिड़की से दिखती हैं सड़कें
सड़क दिखे संसार ।

●

21 / 12 / '14

छोटी एक किरन

फूल हँसे तो सारा बाग हँसे
हँसते बच्चे तो घर-बार हँसे
हँसती है छोटी एक किरन तो
पास-दूर सारा संसार हँसे

हरियाली है खेतों में
तो लहरेगी ही
नाचेगी हवा फसल पर
तो ठहरेगी ही

गहराई नापो तो नदी हँसे
दुख लिखना हो तो सदी हँसे
प्रेम से घर की जिन्दगी हँसे

चलो चलकर हैं पूछते
इन पत्तियों से
उजड़ जाती जो बाढ़ से
उन बस्तियों से

होगा दिन जब चिड़िया हँसे
लहर से बुनी हुई नदिया हँसे
नाव पर तूफान दुनिया हँसे

देखते बहेगी पछुवा
गर्मियाँ कम होंगी
बादलों की चाल सहते
खुशबू कम होगी

आँखों में समय की रंगत हँसे
मौसम की बेवजह हरकत हँसे
बरखा में धूप की आदत हँसे ।

●

04 / 08 / '15

खुशबू पर पहरे

सारी रात घिरी बदली
अब धूप उगी दिन में
बची वर्षा को सूरज ने
लिखा लिया था रिन में

सुबह-सुबह चिड़िया ने सोचा
जमा करे तिनके
खर-पतवार मिले जितने
घर लाना है चुनके

उलझी तितली की साँसें
पत्ते हरे गझिन में

कहाँ नहीं होते बागों में
खुशबू पर पहरे
किताबों में लोक गीतों से
लगते हैं ठहरे

खोज निकालेंगे वे ही
हो बची आग जिनमें

खोजो मिल वह जाएगी ही
पाँव तले धरती
दिपती जो शंखों सी मछली
अंकुराई परती

सूनापन छँट जाएगा
अभी इसी छिन में ।

●

17/07/'15

शहर की आँखें

सोती नहीं शहर की आँखें
किरचें हैं इतनी
आसमान से बादल की है
जैसे आन ठनी

जिस खिड़की से होता
खुशबू का आना-जाना
बया ने शुरू किया है
फिर से घोंसला बनाना

दिन की खबरों में छपती है
भीतर तना-तनी

जगह मांगती रहती
अब रोशनी हाथ जोड़े
चैन की जगह न मिली
खुद को ही कितना तोड़े

इन सपनों वाली आँखों की
खोई हीरकनी

छाँहों में शीतल भी
लगता था जो भूल गये
रहती उम्मीद समय में
हम हँसना ही भूल गये

हवाओं के रुखों पर छाई
बदली बहुत घनी ।

●

02 / 08 / 2015

दिन के कागज पर

लगते थे सपने अनजाने
आज हुए कितने पहचाने
रंग बिखेरे दिन के कागज पर
पहले जैसे

घड़े द्वार रंगोली वाले
न्योते हँसी-खुशी को दिन की
पूरे गाँवों के पोखर के
जल में पुरइन सी पलती सी

चम्पा की सूरत सिरहाने
नींदों में भरती हैं तानें
धूप चमकती हिरना के सिर पर
पहले जैसे

पीले-हरे-गुलाबी दिन के
घुंघरू बाँधे उड़ते तिनके
पीली साड़ी लाल पाढ़ की
जुड़े हाथ माँदर के थिरके

दिन भर हरा चँदोवा ताने
पुरइन से पोखर को जाने

आये छन पलास खोंसे रथ पर
पहले जैसे

खिले हुए कचनार होंठ के
सींचे हुए आँख के जल से
रुके हुए कब से ये बादल
लगे बरसने हैं फिर कल से

सीप-शंख कितने ही छाने
कहती नदी मेह के माने
मेड़ों तक बढ़ आये हैं ये घर
पहले जैसे ।

●

07 / 09 / '14

आज का दिन

आज का दिन बिना भय के
बिना विचलित हुए जी लें
चलो शुभ है

नहीं चर्चा अपहरणों की
नहीं नया हंगामा
खत्म कल हो गया धरना
लिखाकर सुलहनामा

चाय बाजार में पी पीलें
चलो शुभ है

दूकानों पर सब्जी की
उमंगें अब नई सी
साईकिल-टायर मोड़ पर
गाड़ियाँ भी हैं रुकीं

सूखे अंगोछे गीले
चलो शुभ है

लोगों का आना-जाना
शहर जैसे चमकता

केवड़ा का फूल पीला
दिनों के बाद गमका

भात को गाये पतीले
चलो शुभ है ।

●

07 / 08 / '15

अपनापन मन का

कस कर बोला किए न देखा
टूटा क्या कहाँ-कहाँ

था तो मन टीन नहीं
बज ले जब तक चाहे
शीशा दरकेगा ही
चाहे इसे बचा ले

कुछ पल में ही है बढ़ आता
अपनापन इस मन का
टूटा थोड़े में ही
मन में जहाँ - तहाँ

दुख देखे धरती ने
नभ कैसे यह जाने
रात सहज बो देती
कितने दुख अनजाने

सुख जब भी आता जीवन में
ढहते सभी किनारे
पुल बनने के पहले
सुख ने क्या नहीं सहा

दुख में भी आ जाते
ऐसे मनचाहे छन
शीतल हवा सहज ही
ले जाती नन्दन-वन

आँखों में पलती है भाषा
मन में अर्थ जनमता
कागज पर खुशबू के
सहज जल-बिम्ब बहा ।

●

14 / 12 / '15

बहुत लड़े हैं

खर-पतार जमा खेत में
कब से वहीं खड़े हैं
अपने जीवन की खातिर
तब से बहुत लड़े हैं

वहीं रहेंगे जहाँ उगे हैं
दिन-दिन रातों-रात जगे हैं
खुरपी-हँसुवों के कितने ही
घाव देह पर सदा लगे हैं

लिख नई बात परचम में
हाथों-हाथ उड़े हैं

जिनगी जिनसे रही उजड़ती
जान गये वैसे हाथों को
खेतों से भी बाहर हम तो
नाप रहे हैं फुटपाथों को

बार-बार हम जनमेंगे
धन तो वहीं गड़े हैं

डर है लड़ने से उन सबको
हम सब तो नहीं डरा करते
संघर्षों के साथ जीवन में
सपनों को सदा हरा करते

अपने बल की थाह नहीं
मन से बहुत कड़े हैं ।

●

11/08/'15

रंग भरे कचनार

संवाद पठाया है वसन्त ने आने का
सजे हैं इसीलिये फूलों के वन्दनवार

पैदल चलकर आई तितली
हाँफ रही है जैसे
अपने पंखों के रंगों को
आँक रही है कब से

बसते हैं उसके इसी सरलपन से घर-बार

पूरा एक चमकता सा है
चंदा जिद घर में लाने की
बीती तब से कितनी रातें
बचती सी खुशी मनाने की

पतझड़ में सपने उसके घूमे सरे बाजार

कैसे बनती हदें, सरहदें
नहीं जानतीं अब तक आँखें
घूम आकाश आती पूरा
पहन हवा की सोनल पाँखें

मेले में फिर पाटल के रंग भरे कचनार ।

23 / 12 / '15

धान के बोझों सी

देर हुई, नहीं लौटे ऑफिस से भैया
भाभी टँगी हुई दुपहरी सी
दरवाजे पर

भाभी को अब भैया के बिन
खुली हथेली से लगते दिन
पाते ही आहट बदली की
हो जाती है खुशी भी हरिन

खूँटे पर मुँह खोल अधिक रँभाती गैया
बेचैनी मन की गिलहरी सी
दरवाजे पर

कटी फसल के खेत सरीखे
यहाँ-वहाँ घर-आंगन दीखे
बरतन-बासन में नींदों के
आखर-आखर लगते सीखे

धान के बोझों सी लगती अपनी मैया
ओढ़ती है धूप छरहरी सी
दरवाजे पर

अंगूठी उंगली से सरकी
रही बताती दीदी बड़की
धार वसूले की चमकी सी
लगा बिजलियाँ कितनी कड़की

नाचती धूप बनाती सुर-लय ता - थैया
हवा पढ़ती अजान ठहरी सी
दरवाजे पर ।

●

08/09/'14

खुशबू नदी नहाती

फूलों से रूठी थी तितली
अब तो मान गयी
आते ही अपने मौसम के
उनको जान गयी

सम्मानों की भूखी है वह
केवल रस का लोभ नहीं
धूप-हवा सब देखें उसको
महज गाँव के लोग नहीं

अब तो महरानी है तितली
उसकी आन कई

बाकी है अब भी गरमाहट
उसके मीठे रिश्ते में
किसी बात को कभी नहीं वह
निपटाती सस्ते में

लगातार खोजेगी तितली
सुख की खान हुई

इतने दिन के बाद अब मिला
मतलब सीधा जीने का
चमकी नदी नहाती खुशबू
पहने हार नगीने का

खुशियाँ आँज आँख में तितली
छाती छान नयी ।

●

06 / 08 / '15

ताप दुपहर का

चानमुनी लगती पढ़ने
रात उजली लगी होने

निकलने लगा दिन में चन्द्रमा
अतिथि होने लगी अमा
देती है दुख नहीं अभी बरखा
ताप दुपहर का कमा

चानमुनी लगी देखने
रात नींदो लगी सोने

बरगद के आगे से पगडंडी
गई बाहर गाँव से
जाते लोग इधर से सावन में
भींगते ही नाव से

हाथ उसके गोबर सने
चान लगता गीत बोने

खायेंगे आज भैया अनोने
बनिया को नमक नहीं

हाट तो गयी ही थी चानमुनी
याद सहज सबक नहीं

चानमुनी लगती रंग गिनने
ललाते आँख के कोने ।

●

28 / 12 / '15

संगी गीत नये

जितने रहे अधूरे
लमहे वे बीत गये

भागे उसके पीछे पहले
पकड़ नहीं पाये
और बाद में मन से उनको
जोड़ नहीं पाये

कमलों के जल सारे
ऐसे ही रीत गये

पुरइन ने जब राह नहीं दी
चिड़ियों ने ठानी
दूर करेगी कह सूरज से
उसकी मनमानी

उजली धूप-हवा के
संगी वे गीत नये

पेड़ों ने बाँसुरी बजाई
टहनी सजग हुई
बातें अपने मन की उतनी
धुन में सिमट गई

हरसिंगार इस मन के
अँजुरी में शीत पिये ।

●

15 / 02 / '16

खुशियों से बाहर

फूलों के घर में रहते वे
पर खुशियों से बाहर हैं

सूखा और बाढ़ से रिश्ते
उनके जनम-जनम के
तटबंधों पर जीवन आधा
काटें दुखे मरम से

काँसे-अलमुनियम के तसले
डोरी-करनी चमके
पानी के कागज पर लिखती
कोशी कविता जमके

हरियाली के घर रहते वे
पर सुकून से बाहर हैं

गिरते पेन्सिल और सिलेट
बहते जब पानी में
गाँव घर हो गया एक संग
छतरी की छानी में

अभी यहाँ बस जल ही जल है
लय भरनी-तानी में
तज जाएगी कोशी रेती
इस बड़ी कहानी में

माँ के अपने राजकुँवर हैं
पर हँसियों से बाहर हैं।

●

06 / 08 / 15

कभी चैन से

लोग-बाग आपस में
मिलना-जुलना भूल गये
और विदा के समय
अलविदा सहज न कह पाये

मन पर इतने बोझ
आँधियों के साये
फेंकी हुई लकड़ी
मिट्टी में गल जाये

कभी चैन से रहते
और सब अपने मिल पाये

जाती भी टूट तो
गिरह वह जुड़ जाती
समय सही समझता
राह भी मुड़ जाती

नये होते दिनों में
फूल आँखें नम हो जाये

कभी मिला हल नहीं
भाव में खोने से
न सुख वापस होता
बहुत भी रोने से

कभी उन यादों-सनी
सुखद बदली जो घिर आये ।

●

27 / 7 / '15

समझने की भाषा

गाँव से आये लगते हो
कब आये हो भाई !

आँखों में हो पहने लगते
कुछ बहुत समझने की भाषा
मुरझाये कोंपल-अँखुवे से
छिपे न मन बेचैन जरा सा

न सहज शहर में लगते हो
कब आये हो भाई !

नहीं बने हैं छाँह के लिये
इन दिनों चौक में चौबारे
नहीं जिये सुकून से चिड़िया
पुलिसों की गश्त के मारे

आकुल किसलिये लगते हो
कब आये हो भाई !

छूट गया घर-बार गांव में
छूटी खेत-फसल की बातें

बन्द दूकानों के दरवाजे
के आगे कटती हैं रातें

बहुत सपनों से डरते हो
कब आये हो भाई !

●

09 / 08 / '15

गले मिली छाँह

जब-जब धूप बढ़ी बाहर की
हम आंगन आये
गले मिली छाँह और भीतर
तक हम भर आये

गीत-गुनगुनी हवा
मिलती देहरी पर
पिछली होली के दाग
दिखे चुनरी पर
भाभी के वे अनुराग द्वार
कचनार फुलाये

भाई का वेतन यह
घर में नयी खुशी
बड़ी दूर से सुन
काका की तेज हँसी
नीड़ों से बाहर मुँह आधे
चिड़िया मुसकाये

दिखा मलिन मुँह माँ का
तब-तब ठेस लगी

आने वाले दिन की
वह तो रही सगी
बड़े नेह आशीष पिता के
घर को गमकाये ।

●

20 / 12 / '14

खोई हवा कहाँ

भीतर हलचल मन बेचैन रहा इतना
चीजों की पहचान लगी खोने

है थोड़ी सनसनी हवा में
नहीं दीखती चमक बया में
बेशुमार होतीं घटनाएँ
अफवाहें हैं भरी फिजाँ में

नहीं पता इतने दिन खोई हवा कहाँ
बातें देतीं नहीं हमें सोने

होठों पर मुस्कान लिये जो
आते-जाते कभी न दिखते
जोर-जोर से हँसते हैं वे
दुहरी चरित कथाएँ लिखते

सरहद पर कहते हैं जो चाहे जितना
छिपी रोशनी छोटी किस कोने

करते हैं बातें वे डर की
जो जितना पहले डरते हैं

और दूसरे की आंखों में
सूनापन को तब भरते हैं

उमंग प्यार बाँट भी दो सबको उतना
जाय हौसला नया बीज बोने ।

●

05 / 08 / '15

लहरें 'भटियाली'

गाँव गई तुम हो
वहाँ से मौसम ले आना

छान धूप को लेती होगी
पेड़ों की डाली
गाती होगी बड़े यतन से
लहरें 'भटियाली'

सखी की हँसी के
उजलाये पारिजात लाना

किरन पहले ही रंग देगी
घर के सब कोने
ओंसों की फुहार देखेंगे
चिड़िया के छौने

सूरज उगने के
समय का हरसिंगार लाना

पके हुये धानों की बाली
कुछ कहती होगी

सुनना गीत हवा के जब भी
वह बहती होगी

घर की नींद-हँसी,
सुख-सपने लाना ।

●

23 / 12 / '14

तितली की रंगत

फूलों पर हैं बिछी हुई
तितली की रंगत की बातें

आज हवा का मन उदास था
गई नहीं टहनी-टहनी पर
थी वहीं पास में धूप खड़ी
टोकती हुई अनकहनी पर

घुंघरू बँधे पाँवों में
थी बँधी 'परण-गत' की बातें

आधा दिन ढलने को जैसे
लगी सूर्यमुखी मौलाने
मौसम चला पालकी लेकर
धूप-वधू को मना आनने

पल्लवों-सजी देहरी
लिखी हुई आगत की बातें

दिखी पड़ोस के घर में खुशी
से उमगी रोशनी दिये की

है किसी लड़की की उंगली
में अँगूठी चढ़ी लगन की

वह छोटा किसान जैसे
याद करे लागत की बातें ।

●

19 / 11 / '14

हरे - भरे दिन

कहें आमजन कैसे हैं सब

कितनी मार गई मँहगाई
बाजारों की चमक-लुनाई
काँप रहे हाथों से धुनकी
सिले न तोशक और रजाई

विवश पीर सहने को हैं अब

नहीं एक दिन रहे चैन से
थकी-थकी आँखों की पुतली
मिट्टी की दीवारों पर यह
सावन कात रही है तकली

आएगा अपना वह दिन कब

पेड़ खड़े हैं बिना पात के
हरे-भरे दिन गये बाग के
घर से बाहर नहीं निकलती
तितली रातों-रात जाग के

गाएगी फूल खिलेंगे तब ।

09/08/'15

सहज सपनों में

दुख ही था जिससे जुड़े रहे हम दोनों
और सहज सपनों में रहे घर बनाते

चारों ओर अंधेरा गाढ़ा
जब दिखता था
आँखों के आगे ही दिन तब
सब लिखता था

जीते रहे बेचैनी में हम दोनों
हवाओं को रहे हमेशा घर बुलाते

कुछ वैसा था जिससे लगता
था घर सूना
हरदम बाकी रह जाता था
कहना - सुनना

रितु की बातों में आते थे हम दोनों
जोड़-जोड़ चीजों को रहे घर सजाते

सीधी बात हरापन की थी
धरती दीखी
वहीं उसी से लय जीवन की
हमने सीखी

भींग-भींगकर वर्षा में हम दोनों
इसी तरह घर अपना रहे बचाते ।

16 / 07 / '15

माँ की आँखें

आते ही अगहन के
घर की सूरत बदल गई

रहते अगोरते धूप-गाछ
पत्तों से कान मिला
जैसे-जैसे है दिन चढ़ता
मौसम का मान खिला

हँसती छोटी लड़की
जैसे सचमुच कमल हुई

कोई बात नहीं अब घर का
यह बंटवारा भी हो
माँ को पता कि कैसे कम में
अब सही गुजारा हो

फिर भी माँ की आँखें
तो हरदम ही सजल हुईं

पुरइन के पत्तों पर जैसे
बूँदें इसी वर्षा की

बड़े भाय के मन की हलचल
अब भी तो है बाकी

धुन वंशी की यमुना
पर अब तक है तरल रही ।

●

28 / 12 / '14

रंग बदलता

यह कैसा दिन है
छन-छन जो रंग बदलता

अभी धूप थी, अभी छाँव है
रही खेलती हवा दाँव है
इतना चुप-चुप रहने वाला
लगा बोलने तेज गाँव है

बजता झिन-झिन है
सुर जिसका नहीं सँवरता

अब तो चुप था, अभी बोलता
फूल धूप की पोल खोलता
हरदम हँसते रहने वाला
फूल दुखों के बोझ तोलता

गड़ा हुआ पिन है
थोड़ा भी नहीं सरकता

दिखते सूखे पेड़ हैं जहाँ
तिनकों की बिखरी नींद वहाँ

मन बेहद बेचैन खोजती
चिड़िया उस सुख के नीड़ कहाँ

कंधे पर रिन है
दिन अपना नहीं सँभलता ।

●

12/08/'15

बँटते पानी में

पत्थर को पीठों पर लादे
हवा सुलगती है
इन मेड़ों के आगे ही अब
आग बरसती है

दौड़ लगाती खलिहानों तक
हवा रुकी सी
आधी से भी अधिक पत्तियाँ
लगी झुकी सी

धूप - नदी की परछाँई में
लहर सरकती है
बँटते पानी में आँखों की
आह धमकती है

हरी फसलों के इन दियों में
मिहनत-बाती
रहते जलते हुए रात - दिन
थकन न आती

टूटे हुए बाँस के पुल पर
हवा सहमती है

कोशी की तपती रेतों की
आँख चमकती है

पकती हुई ईंट को देखे
ये दीवारें
पीपल की पीली फुनगी पर
उतरे तारे

हिलती ईखों की देहों पर
कथा पनपती है
अनगाये दुख की नींदों की
पाँख फड़कती है।

●

09/09/'14

लहठीवाली अरुणाई

बहुत दिनों पर घर आई है
जाले झाड़ रही

अपना ही घर समझ मकड़ियाँ
सुख से फैली सी
बीच बालकनी साड़ी एक
रख मटमैली सी

लहठीवाली अरुणाई है
द्वार बुहार रही

थोड़ा चलने में ही बजते
नूपुर पाँवों के
सिन्दूर पसीने के रोपे
विरवे भावों के

जागी सी फिर तरुणाई है
नयी बयार हुई

गाँवों के बाजारों में भी
ऊँचे दाम हुए

चीजें पहली सी रही नहीं
कितने नाम हुए

घर की चिड़िया शरमाई है
आंगन पार हुई ।

●

24 / 12 / '14

नदी की लय में

जब भी आये तुम आगे मेरे बुरे समय में
चुभोता था काँटे पतझड़ मन था विस्मय में

इतना गाढ़ अंधेरा
हाथों को हाथ नहीं दीखे
नयन-लोर होंठ हँसी
सब से ही हम कुछ सीखे

तब नींद नहीं रातों को जगना ही असमय में

गर्म हवा थी इतनी
वीरान सी लगे दोपहरी
खुशबू पर था पहरा
घर के बाहर थी वह ठहरी

समय नहीं रुकता लपटें चढ़ी नदी की लय में

अपनापन आपस के
सभी लगे दुख में बंटने से
थोड़ी मिले रोशनी
काले कुहरे के छँटने से

आँखों की उदास छाया लिपटी मन के भय में
रही उलझती आँख पढ़ी हुई कथा-प्रलय में ।

17/07/'15

जुगनुओंवाली पालकी

अंधेरा जब भी होता घना
जगता एक बियावान मन में

सौ-सौ जुगनुओं वाली पालकी
लेकर हवा निकलती
हाथ मिलाती चिड़ियों-फूलों से
खिड़की से जा मिलती

हुआ जाता जी अभी अनमना
बसी है कोई थकान तन में

खिलाते इन्द्रकमल बूँदों के
गाते ढेर सी धुनें
विचलित सी हो जातीं आँखें
छाँटें फिर किसे चुनें

रेत महल रह जाता अधबना
धूप का बनता मचान वन में

झुलस गईं छाँहें चंदन की भी
धूम मची तापों की

पास दुख में भी दीख जाती
हलचल उन छापों की

होगा जो सुख से भी सामना
बन जाये शायद बात छन में ।

●

11/12/'15

मरुथल में जल

कोई भाई कोई राखी
पहले साँच जान लेते
किन शब्दों में होती कितनी
सबकी आँच जान लेते

समय कभी तो सच कहता
कभी छोड़ देता पठार पर
मरुथल में जल आ जाये
या कोई हरिणी पहाड़ पर

उलझने से गणित के पहले
उसकी जाँच जान लेते

सच को साबित होने में
जब भी बहुत देर हो जाती
होता छटपट जी कितना
खुद को ही घेर नहीं पाती

रखते ढुलमुल विचार कितने
हैं ये काँच जान लेते

जब भी विपरीत समय की
बचैनी सी होने लगती
सामने आँखों के वर्षा
की बूँदें आगों सी बोतीं

अपने मन के सारे दुख को
हम तो सही वाँच लेते ।

●

31 / 07 / '15

बच्चे बागों में

अनमना देख फूलों को
भाई सा सिर पर हाथ रखा
मौसम पहली बार आज
समझाने साथ रहा

घूम रही थी तितली
जैसे बच्चे बागों में
उलझी दादी जैसे
सुजनी के इन धागों में

बंधा हुआ माँ के आँचल
में कोमल प्यार रहा

धूप बड़ी नखरीली
आती-जाती है धीरे
मन का मोह बचाती
जैसे भाभी ये हीरे

आज नदी के कम जल में
सोया ही ज्वार रहा

घर को अपने हाथों
आज सजाया है माँ ने

चौक पुरेगी भाभी
वह सोच रही क्या जाने

पास अधिक अपने से भी
अपना घर-बार रहा ।

●

23 / 12 / '14

खुशियों का पानी

राह देखती थकी फसल
की आँख लगी
बादल किसके रोके रुका हुआ

खिले हुए फूलों की आँखों
में खुशियों का पानी
कब से है सूख गयी धूपों
में छायी वीरानी

उमंग की बांध पोटली
उस तरह जगी
खुशबू का सिर जैसे झुका हुआ

उड़ने की इच्छाएँ रखती
पर वह उड़ी नहीं जो
दिनों बिन पानी के वर्षा की
रातें खड़ी रही जो

पहले से लगती वह थी
जो सहज सगी
चाँद अकेला लगता दुखा हुआ

बदला है मौसम इतना तो
गयी बदल नरम हवा
बचे हरेपन को भी धीरे
जैसे हो दिया गँवा

खेतों का मुँह धोने में
वह रही पगी
फसलों का वैभव है चुका हुआ ।

●

04 / 08 / '15

अपना घर

नहीं था एक अपना घर
गाँव से जब शहर आए

आँख में थी नदी बेचैन बहती सी
छाँह थी धूप जैसी कथा कहती सी

उतरता आकाश सिर पर
हम अब गाँव के पराए

हँसी होंठों से निकल दूर जा बसी
सड़कों की भाषा कोलतार में फँसी

वह एक शब्द था समर
दिखते न बीज अँकुराए

नहीं दिखती कोई फसल पकती सी
अगहनी हवा भी सरकती कतिकी सी

इधर नाव उधर है भँवर
सुख को रहे हम जुगाए ।

●

16 / 07 / '15

अंकुर दिन का

इसी बीज में छिपा हुआ
है अंकुर दिन का
शुभाशीष दो इसे सँवारो

नहीं दबेगी लाख दबाओ
हलचल इसकी
जिदें तोड़ देंगी सपनीली
सतहें मन की

फेंको पानी में भी तो
हरियाली होगी
देखो और इसे अँकवारो

तुमने है पढ़ी नहीं भाषा
हरियाली की
बिम्बों में ढलते जो अनुभव
की लाली की

माना वह अनबोली है
इच्छा तो होगी
रखो पास में इसे निहारो

तट से अनदिख होती जैसे
लहर नदी की
हँसी-नींद से भरी हवाएँ
इन सदियों की
गहरा है पानी फिर तो
कोई बात नहीं
धीरे अपने पाँव उतारो ।

●

03 / 08 / '15

क्रोशिया काढ़ती हवा

सुना चिड़ियों से कहते
फूल से करते बातें
आने को मधुऋतु है
होने को दूब रातें

तितली को मतलब अपने से
नहीं देखती मन औरों के
पेड़ों पर छा जाने वाले
मधुआये गमके बौरों के

क्रोशिया काढ़ती हवा
हैं याद में बरसातें

झहरते मोती आकाश के
घर में, दलान, खलिहानों में
कैसे बचा सकेगी पारो
ओस-राग बजते कानों में

सजाती है आँखों में
आज की शुभ सौगातें

पेड़ दीखते मामूली से
पर हैं वे राजे-महराजे
सोते आसमान के नीचे
धरती हरी कमीज विराजे

बाँहों भर फैली खुशी
और ये रिश्ते-नाते ।

●

19 / 12 / 15

मीठी बातों की

पहले जान न पाये तुमको
दुख है नहीं जानने का

मीठी बातों की
एक उम्र हुआ करती है
सच साथ न दे तो
उसकी गंध उड़ा करती है

उलझा है वह धागा काला
तुमको सही मानने का

मन के मतलब ने
बाहर तो काँटे रोप दिये
सीमाओं ने तो
सौ-सौ टुकड़ों में बाँट दिये

अब कोई अर्थ नहीं तुममें
सुन्दर के जागने का

जो जहाँ से मिला
सबको अपने में जोड़ लिया

सबके आसंगी
शब्दों-सपनों को मोड़ लिया

रहा समय अभी नहीं तुममें
उस भाव को थामने का ।

●

31/07/'15

पेड़ों की टहनी

माँ की ममता भरी हुई है
पेड़ों की टहनी
छिपा रही अपनी बाँहों में
फूलों को

रात-रात भर जगती
बतियाती दिन में धूपों से
हवा बड़ी दीदी सी
नहलाती है अब रूपों से

बड़े नेह से देखा करती
कूलों को

राह अगोरे रहती
धूप-छाँह के उजले दिन में
छुए नहीं थोड़ी भी
गरमी बेचैन रही मन में

नहीं पास आने है देती
धूलों को

शुभाशीष भर अँजुरी
मिले सोचती रही इसी से
नेह बांटने का है
अब आया शुभ समय किसी से

खुशियों संग झुलाता मौसम
झूलों को ।

●

28 / 12 / '14

शंखों सी चमकीली

बरगद बाबा साँस रोककर
ताक रहे हैं राह
तेरे बिना नहीं अब मुन्ना
मिलना यहाँ पनाह

कुएँ सूखते ताल-तलैया
नदी हुई जलहीन
शंखों सी चमकीली मछली
होती गई विलीन

हँसी नहीं अब इन होठों पर
दुख का कोई थाह

आग बोरसी की बुझ जाती
है मिलती नहीं हवा
चिड़िया नहीं चैन से सोती
सँवरती नहीं जवा

कौन जगाये वनफूलों को
रितु में इतना धाह

खुलती कहाँ घरों में साँकल
किरन के दरवाजे
कौन कभी आंगन की आँखों
नया काजल आँजे

जैसे कोई नहर डुबाये
पिघले कोई लाह ।

●

01/08/'15

घुली लयों सी

गमला में रोपी गुलदाउदी
धूप में मुरझती है

पास के फूलों को देखती
बच्चों की हँसियों जैसी
चिड़ियों सी है राह रोकती
रंगों में घुली लयों सी

आएगी उधर से हवा अभी
किसी से उलझती है

अपनी खुशियों के हैं टोले
अलग है सबकी कहानी
वैसे तो मालूम सभी को
सबका ही दाना-पानी

बाग में उड़ती हुई तितलियाँ
बहुत कुछ समझती हैं

फूली रंगोवाली कलियाँ
दिन बहुरे हैं बागों के

चिड़िया जा-जाकर फिर लौटी
बँधी नेह के धागों से

दिनों के बाद उन कथाओं की
डोर वह सुलझती है ।

●

09/1/'15

शंख बजा जैसे

हाथी पर चढ़कर आ बादल
बरस रहा खर-पतवारों पर

नदियाँ-पोखर रहे देखते
फूल कुई के इन्तजार में
शंख बजा जैसे सावन का
खड़ी हुई चिड़िया कतार में

आया है तो बरसेगा ही
ऊँचे मरुथलों-पठारों पर

महलों के कंगूरों से भी
खपरैलों से चूता पानी
शोर मचाता कभी-कभी तो
करता है अपनी मनमानी

जल में घुले बताशे जैसे
अनदिख से हुए पहाड़ों पर

कोई बजा रहा हो माँदर
लालटेन की लौ में जैसे

लालपाढ़ की साड़ी की लय
थिरक रही बाँहों में कब से

मीठी नींद भरी ये रातें
बादल के गीत फुहारों पर ।

●

12/07/'15

सपनों का बीज

फूलों पर रख पाँव
तितलियाँ सोती हैं

जाने कैसे-कैसे सपने
आँखों में आते
हाथों की रेखा को बुनते
ये सुख हरियाते
लहरें जल के दाँव
अभी भी खोती हैं

बूढ़े बरगद की बातों में
चिड़िया जब आई
जालों में फँसने के भय से
अब है घबड़ाई
काठों की यह नाव
लगे अब मोती है

उदास कभी होती भी नहीं
पता नहीं चलता
उसके दुख में ही सपनों का
बीज पला करता
मन के उजले भाव
तटों पर बोती है ।

● 06/04/'15

दुखता अलग रहना

सब कुछ तो पास है नदी के
वह फिर उदास है

धूपों की संगत में
रही पेड़ की तरह खड़ी
जिद में अपनी उछाल खुशियाँ
अकेली छाँहों में अड़ी

मौन ये पिछली सदी के
तब कौन पास है

हैं बोल होंठों पर न कढ़ते
बहुत दुखता अलग रहना
अकेलापन के इस द्वीप में
मोमबती सा चमकना

अंधेरे में वन्दगी के
लगता उजास है

बहतीं जब नहीं हवायें भी
ताकती रहती टहनियाँ

आँखों में बरसात ओढ़ती
चमकती जल में मछलियाँ

तोड़कर ये सारे सलीके
दिन तो कपास है ।

●

29 / 10 / '14

रोपें धान कहाँ

बदल गई मौसम की रंगत
रूठ गई हरियाली
देखी नहीं फसल के मुँह पर
तब से कोई लाली

तट पर नदियों के बैठे
कब से उदास पाखी
लगता मन ही मन पढ़ते
वे कबिरा की साखी

पूज रही छोटे गहबर में
माँ अब देवी काली

मेड़ों पर सबकी आँखों
में उमड़ी चिन्ताएँ
रोपें धान कहाँ से वे
जल खेतों में लायें

बहू-बेटियाँ कहें कथाएँ
सब 'जटा जटिन' वाली

हो दया इन्द्रदेव की
घन उमड़े चौमासे
घरों में धान के बोरे
बजते ढोलक-तासे

हल्दी चढ़े हाथ हों पीले
हँसे सखी शेफाली ।

●

13 / 08 / '15

फागुन रंग रंगे

नदी-झील पोखर उपलाये
फागुन रंग रंगे
कितने अपने हुए पराये
लगे ये बहुत सगे

लहरें देख रही चिड़ियायें
संग-संग नाच रहीं
धूप-हवाओं की गप-शप में
बादल को जाँच रहीं

सागर भी जैसे अलसाये
फागुन रंग रंगे

पत्तों की परछाईं जल में
दरपन को हाथ लिये
पेड़ों की पाँतों की लय में
खुशबू के मिली गले

सावन की गिरहें खुल जायें
फागुन रंग रंगे

बचा लिया था कुछ बूँदों को
अबके उस सावन ने
जल गीतों में बांट दिया है
उस लय को कानन ने

पुरइन के पत्ते शरमाये
फागुन रंग-रंगे।

●

5/04/'15

नदी हुई बेचैन

सीधे-सीधे निकल न पाते
सुदिन शर्मीले से
विंधे हुए पिछले फागुन के
गीत सुरीले से

गर्म हवा है तेज धूप में
बच्चों से मुरझाए फूल
नदी हुई बेचैन आँख पर
उसने डाले हरे दुकूल

फूलों के ये तीर बाग में
बड़े नुकीले से

वनपाखी चहकेंगे वन में
फूल-फूल हँसेंगी रातें
आंधी-तूफानों के डर से
नहीं रुकतीं मन की बातें

मौसम दुखते नहीं पेड़ में
असह बर्फीले से

मन भर प्यार होंठ भर हँसियाँ
आँख भर छलके आँसू में
आगों की लौ में थर-थर सी
कड़ी धूप बचा बाँहों में

गरमाई आती न देह में,
कपड़े गीले से ।

●

17/7/'15

मिल जाएगी रंगीनी

मौसम को प्यार करे आगे बढ़कर चिड़िया
बदरंग न होने पाये फूलों की खुशियाँ

खोजें तो मिल जाएगी रंगीनी
इधर-उधर की सारी चीजों में
नहीं हुआ करता कुछ भी नाकाफी
ताकत है उगने की बीजों में

मामूली दिन में भी तो लहरातीं नदियाँ

बाढ़ अकाल भले आये-जाये भी
पर बंजर तो नहीं हुई धरती
मरुथल में उगती है हरियाली भी
लेती बाँध आँख को भी परती

हैं बनते-बनते ही बनती कितनी सदियाँ

जिस दिन मतलब रहे नहीं कमलों से
उजलाये जल वाले पोखर को
उगने से सेंवार और सीपी के
जल ही छिप जाते जीवन भर को

नौ हार पहनकर भी उदास लगती परियाँ ।

●

22/08/'15

कोई सुख आधा

भले-भले लगते थे मन में
देखे थे सपने अनजाने

इस जीवन की बात यही थी
रोटी थी तो दाल नहीं थी
तितली तो बैठी फूलों पर
वह खुशबू के साथ उड़ी थी

कोई शंख चमकता दीखा
जैसे नदियों के सिरहाने

गोबर धुले नहीं हाथों के
थापे थे दुपहर से उपले
सौ-सौ बार दिखा था सूरज
दिन अपने भी होते उजले

रेखायें कब होंगी सीधी
कहता कौन राम ही जाने

दुबली-पतली पगडंडी पर
संग हवा के चलना सीखा

अब तक यही जिया है उसने
कोई सुख आधा ही देखा

लोग कहेंगे राम कहानी
उसने जल से जल ही छाने ।

●

18 / 12 / '15

मासूम बचपने में

सूरज की किरनें पहले जिनके मुँह धोतीं
वे चेहरे रहने लगे अभी अँधरे में

मौसम बदला कैसे
जब हवा नहीं बदली
बासी मुँह से शिकवा
करती छोटी तितली

मंजरियाँ आमों वाली खुशबू को बोतीं
बच्चे दिखते वे स्याह धुंध के घेरे में

धँसते कीचड़ में वे
धान के रोपने में
कोई रंग है नहीं
मासूम बचपने में

खोलती घर की साँकल धूप खुशियाँ बोतीं
नाले में पकड़े मछली शाम - सबेरे में

चहक कहाँ चिड़िया सी
अब है सुनता कोई

घर की 'लछमी' जाने
कब तलक रहे सोई

संसद में कब से बहसों पर बहसें होतीं
फटे अँगोछे में हैं वे निकले फेरे में ।

●

05 / 08 / '15

ओसों की टिकली

पीले फूलों पर ही जाती
भूरी पाँखों वाली तितली

नीची आँख किए बैठी है
देख रही उसकी तन्मयता
बड़ी बहन सी हवा बाग में
बचा रही उसकी कोमलता

होने को दुपहर है आई
चमक रही ओसों की टिकली

उजले फूलों की सुंगध की
डोर पकड़कर आई चिड़िया
मीठे गीत अधर पर उसके
सुर की बही जा रही नदिया

उजले शंखों सी है चमकी
बही धार में छोटी मछली

पेड़ों की हरियाली जैसे
खुशियाँ बेटा के आने की

बड़े दिनों पर माँ ने पहनी
साड़ी हरी सँवर जाने की

बाग है घर या घर बाग है
रूप-रंगी गंध सब असली ।

●

10/11/'14

घर में ही बाजार

जड़ तक हिला दिया फूलों ने
बात नहीं मानी
कहते पेड़ों से वह कितने
बनते अभिमानी

आया है वैशाख नीड़ में
है 'अछछ' गरीबी
खाती थी घर से जो नदिया
है बनी करीबी

पंचैती में बढ़ फूलों ने
अपनी ही ठानी

सूनी सी हुई डगर घर में
थी संझाबाती
कोई नहीं गिला दरवाजे
हिरनी रम्भाती

गुस्सा है रमजान ने कहीं
है 'चचरी' तानी

कीनने क्या जाए बाजार
घर में ही आया

कहने को कहता है केवल
हूँ तो सरमाया

पीले पत्तों पर पीपल ने
लिखी वह कहानी ।

●

26 / 08 / '15

रंग बादल के

बेचैनी जब से बढ़ी नदी की
उड़े हैं रंग बादल के

परतियों पर जा कभी बरसा नहीं
डुबोता छोटे घरों को
तोड़ता रहा नदी-किनारों को
डराया भी तब बड़ों को

धुलते पीले करोटन जानते
सुर कब सजते मादल के

बड़े मन से बहती एक गंगा
भागवत के छन्द गाती
धूप में जगती हुई तुलसी
पत्तों में सांसे जगाती

जुगनुओं से गले मिली रोशनी
काफिले चल पड़े कल के

देखती है दूर तक परछाईं
बेचैन साथ चलने को

उन मोड़ों तक आकर हवा बंटी
कहे गंध फिर मिलने को

नदी में उतरी हुई लहरों से
करेगा पुल बात चल के ।

●

29 / 12 / '14

फूले इन्द्रकमल पर

आंगन है तो उतरेगी ही गोरैया

झाँकेगी वह नहीं दूर से
सीधे आएगी
पंखों में ही बाँध-बाँधकर
खुशबू लाएगी

लांघे लोहे की जाली जैसे भैया

संग-साथ उसको कागा का
अब नहीं सुहाता
खुशियों वाली हँसी नीड़ की
वन सहज लुभाता

फूले इन्द्रकमल पर नाचती थैया

आगे बढ़ती नहीं कभी भी
अपनी सीमा से
दुखता है मन अब रिश्तों की
घटती गरिमा से

उसकी हँसी चुराकर बहती पुरवैया ।

16/07/'15

दुनिया भर की बातें

भावुक होना भी
एक कथा है जीवन की

आती रहती मन में
दुनिया भर की बातें
पलभर विराम भी तो
दिन हो अथवा रातें

स्मृति में खनकती
यादें वे कई जनम की

जितना देखा लगता
कहीं अधिक अनदेखा
हजारों भी लिख जाय
लगे अधूरा लेखा

नम परतों में बुनती
जातीं वे धुनें इमन की

मन में जमा हुआ जो
न ले नाम जाने का

यह दुख समय का अतिथि
आँखें भर लाने का

होती उसकी भी
कोई तो वजह तपन की ।

●

26 / 06 / '15

सीखे फूलों से

तुम नहीं जान पाये
हम पहचान गये कब के

निर्मम इतना होता जीवन
हम जिनको समझे आलम्बन
संवेदनहीन हुए इतने वे
अनजाने तोड़ गये बंधन

तुम नहीं मान पाये
होते कैसे मन सबके

सीखे फूलों से चिड़ियों से
लहरों वाली इन नदियों से
केवल अनमन खिलना-उड़ना
बह जाना सुख से सदियों से

तुम नहीं छान पाये
पानी से छोटे तिनके

ऊँचा ही उड़ने की जिद में
पाले कितने ही दुख-सदमें
खुशियों के वे सारे सपने
रहे न सब दिन अपनी हद में

तुम नहीं तान पाये
पाल पीले उत्सव के ।

●

25 / 08 / '15

सुजनी को धूपों ने

धरती ने आवाज लगाई
अम्बर जाग गया
अकेलापन नदी-कूलों से
जैसे भाग गया

प्रार्थना की चिड़िया ने
मंदिर में जाकर
खुशियों से भर गई हवा
देश राग गाकर

पतली सुजनी को धूपों ने
फिर से ताग दिया

बहुत दिनों से दिखे नहीं
तारे अपने से
बादल फिर घिरे उड़ गये
छोटे सपने से

पंखुड़ियों के दायें-बायें
झरा पराग नया

पसार आँचल धरती ने
सारे सुख मांगे
अपनी सीमा में दे
मन से नभ उमगे

आधा जेठ आज ही जैसे
पिछला फाग हुआ ।

●

28 / 12 / '14

कच्चे दावे

शायद उसने बातें सुन लीं
चुप है इसीलिये

नजर मिलाने के काबिल
जो था ही कभी नहीं
बोल नहीं फूटे फिर भी
आँसू भी थमे नहीं

तीन वर्ष ये बीते कैसे
कैसे सहज जिये

सबने ही समझा था उन
रंगीन दिखावे को
माना मन ने नहीं कभी
उन कच्चे दावे को

नहीं रोके एक पल भी सौ
दिन को साथ किये

आई, मुड़ती चली गई
मौसम को देख हवा

भागी तितली देख सूर्य को
जलने से बचा तवा

शुरू हुआ जीवन जैसा भी
सब कुछ बदल गये ।

●

13/08/'15

फूलों के आगे

मौसम का रुख देख
हवा के दिन जैसे जागे
घुटने टेक दिये तितली ने
फूलों के आगे

गंध-पराग लूट ले जाती
अपने रंग महल रख आती
थोड़ी नमी बचाकर अपनी
भाभी सी खुद को सँवारती
बाद दिनों के किरनों ने
बटन धूप के तागे

लगवाये फूलों ने पहरे
गंधों के आने-जाने पर
ऋतु की आवाजाही में भी
रोक नहीं मना पाने पर
अपनापन के इस उत्सव
को देख हिरन भागे

पछुवा धूल उड़ाती जैसे
रंग जाते पेड़ों के मुखड़े

चन्दन-चन्दन मन बन जाता
अँजुरी के अबीर सब बिखरे
हरी ओढ़नी गमकी सुलझे
रिश्तों के धागे।

●

20 / 12 / '14

हथेली में धूप

बहुत दिनों पर आई है
तो जमकर बरसेगी
तभी पोखरों में खुशियाँ
कुइयों को भी देगी

पैदल चलकर आया बादल
कंचा खेल रहा गलियों में
आँखें नचा देखती चिड़िया
सुख बुनता जाता लड़ियों मे
उजली धार बहेगी

बैठ जिएगी कब तक आखिर
सोना इस माटी के घर में
लकड़ी चुनकर, साग तोड़कर
देखेगी सपने दुपहर में
बारिश को सुमरेगी

नीली आँखों वाली लड़की
धूप हथेली में भर लाई
उसकी तरकीबों पर बूँदें
मन ही मन जैसे मुस्काई
फिर से रंग भरेगी

●

06/12/'15

मन की खुशियाँ

मन से मन की बातें करते वे जी लेते
हम तो वैसा करते
कभी न जी पाते

सुनते अपनी बन्द
खिड़कियों, दरवाजों में
रखते मन की खुशियाँ
भी सहेज दराजों में

धूप-हवा को साध मूँद आँखों को लेते
हम तो वैसा करते
सहज न हो पाते

काली तितली अपने
परों की रंगोली को
जैसे खुद ही देखे
खुशी से भर जाती जो

पोखर की कुई अकेली सी जो रह लेते
हम तो वैसा करते
कभी न रह पाते

बच्चों के हाथों में
कागजों की नाव नहीं
टिप-टिप करे बरखा में
बूँदों से लगाव नहीं

ओस की पलक पर धूप की साँकल रखते
हम तो वैसा करते
कभी न हँस पाते ।

●

19 / 11 / '14

केवल खुशी नहीं

सब कुछ है इस घर में
केवल खुशी नहीं
चिड़िया भी उदास हो जाती छत पर

एक दूसरे से बिन बोले
गुजर रहे दिन-माह
घिरे हुए अपने-अपने दुख
मिले न कोई थाह

भरी घटा ऊपर में
बरसी कभी नहीं
पहरा है जैसे 'परण' और 'गत' पर

निभाना इसी एक ठौर की
बँटती हुई हवा में
नीची आँखों की पुतली के
घुले रंग जवा में

अब जल के पोखर में
दिखती कुई नहीं
दिखते हैं जिद के पहरे कीमत पर

वैसे भी तो अनमोल बहुत
है सहज वह पल-छिन
बिना न उसके कोई कहता
ऐसा न होगा दिन

जल दीखे मरुथर में
ऐसी कथा नहीं
शब्द अनमने रहे कितने खत पर ।

●

06 / 07 / '15

दुपहर थी इसीलिये

साधारण थी इतनी
सुन्दर थी इसीलिये

खोंसती फूल कनेर के
अपने काले केशों में
मटियारे थे वे फिर भी
सौन्दर्य विरल देशों में

सुभग मयूरी कितनी
मनहर थी इसीलिये

प्रेम-सघन मन था उसका
चिड़ियों से उन फूलों से
इमन राग सी थी बजती
जोड़े नदियें कूलों से

सुबहें तपती जितनी
दुपहर थी इसीलिये

एक कुहासा था कोई
उसके मन को तब घेरे

टूटी छानों से दिखते
सौ-सौ बरखा के फेरे

बिन सँवरी सी उतनी
जेवर थी इसीलिए ।

●

20 / 12 / '15

घर की रंगोली

बहुत सरल साधारण थी
अपने छोटे घर में
आँखों से बातें करती
धूपों को कहती झरने

घर बुहारना, बरतन धोना
जाना नदी किनारे
नाच देखना बतखों वाला
लहरें उसे पुकारे

बहुत नरम इस कारण भी
सबसे वह तो छोटी थी
बातों पर लगती डरने

नहीं जान पाई दुख को तो
माँ की थी हँसी-खुशी
सबसे अधिक जरूरत भी तो
थी घर को उसकी ही

रोई बरसी सावन सी
खिल फागुन सी हँसती थी
ना कहना सीखा उसने

पाँव को जब वह रंग लेती
हाथ को रंगवाती
साग तोड़ती मिल खेतों में
सबको कथा सुनाती

हरी दूब सी आंगन की
घर की वह रंगोली थी
सब बात लगी अब सुनने ।

●

04 / 12 / '15

बरस रहे बादल से

लगते राजे-महराजे थे
पर मामूली थे हम

आधा पेट खाकर भी तो
गाते थे गीत सुरीले
गड़ते कांटे कभी नहीं
जितने भी मिले नुकीले

हँसकर बरस रहे बादल से
तब हाथ मिलाते हम

चुनते जाकर खेतों में
कटती हुई पतंगों को
धार-धार बहते सुख थे
पाकर उन सब तमगों को

केले के पत्तों के छाते
ओढ़कर नाचते हम

मछली बसती कीचड़ में
मछली में ढेरों खुशियाँ

खुशियों के चंदोवे में
बसती थी अपनी दुनिया

मिट्टी के वे घर गलियों में
नहीं छोड़ पाये हम ।

●

15 / 1 / '16

मामूली से दिन

मामूली से दिन थे अपने
हम थे नये-नये
इसीलिये तो शहर गाँव से
कितनी बार गये

सड़कों पर भटके सोये
बन्द दूकान के आगे
अखबारों की चादर पर
हम नींदों में भी जागे

हुआ सबेरा हम बरतन से
खुद को माँज लिये

अखबारों को बाँटे भी
देहरी-देहरी घूमे
प्रेमगीत के बोल सुने
हम तो तब खुलकर झूमे

नेह दिखा जिन आँखों में भी
चुपके नेह कहे

आँखें पोछीं बच्चों की
तभी ईश्वर को जाने

हो जाएगा कुछ ऐसा
हम खुश हैं तब मनमाने

हम आने वाले समयों की
खातिर बहुत सहे ।

●

04 / 02 / '16

छत से छाये पिता

माँ के आशीष-फूल में तुम
मनका से जड़ते रहे पिता
मौसम की बौछारों में भी
तुम छत से छाये रहे पिता

रोके थे अपने दम-खम से
दिन के सब झंझावातों को
गिरने से बचा लिया हरदम
तुमने सपनों के पातों को

विपरीत दिशा से धूलों की
रोकते रहते आँधियों को
जगते तो रहे रात भर तुम
नींद में हम ढल गये पिता

बचा लिया है आँचल माँ का
आँखों के बहते पानी से
हम रमे रहे नादानी में
उबरे न कभी मनमानी से

तुम मिले कितने ईश्वर से
तुमने आभा दी बचपन को
हम युवा हुए तो जान गये
तुम जो सिरजे थे सही पिता

अपने रोम-रोम में हम तो
उन गरिमाओं से भरे रहे
तेरे ही श्रम-संघर्षों से
मन से इतने हम हरे रहे

तुम नदियों की जलधारा में
लय में हरदम गाते रहते
तुम अनहद नादों में जैसे
दूरागत धुन से मिले पिता ।

●

26 / 02 / '16

लाल टहनी पर अड़हुल

याद आता है तुम्हारा
नीलमणियों सा चमकता
केतकी सा खिला बचपन
हँसी जैसे पाँव के घुंघरू गये हैं खुल
लाल टहनी पर लिखा अड़हुल

खिड़कियों पर किरन के अनुराग घुलते
हवा 'देवी भागवत' के छंद गाती
अगरु सा गमका हुआ लगता सबेरा
बाँस की पत्ती इमन की धुन बजाती

एक होना है तुम्हारा
बहुत होने सा दमकता
मोगरे सा खिला अनमन
साँस जैसे शहद की लयों में गई हो घुल
लाल टहनी पर खिला अड़हुल

तुम पठारों पर बजी 'तुहिला' सरीखी
देहरी की रंगोली पर पाँव रखती
वर्णमाला सी विछावन पर छपी
मीन-मयूर जैसी भीतों पर दिखती

मछलियों सा मन तुम्हारा
सीप सा रहता खनकता
कोशी के जल सा दरपन
सुरभि भाषा की बनाती हथेलियों पर पुल
लाल टहनी पर हँसा अड़हुल

सघन होने लगती घर की हरियाली
कभी तुम आँखों से गाती 'भटियाली'
कोमलता-बुनी मधुबनी कला-हँसियाँ
धूप की तितलियाँ उड़तीं रंगवाली

आँख का अंजन तुम्हारा
खेत में अंकुर पनपता
सुख ने शीतल किये तपन
खुशियों के नये छींटों से कुहा जाती धुल
लाल टहनी पर नया अड़हुल ।

●

31/03/'16

गीतों में क्रांतिकारी करूणा : डॉ. मैनेजर पांडेय

खुशी की बात है कि कई दूसरे गीतकारों की तरह शांति सुमन की संवेदनशीलता विचारधारा की आँच से सूख नहीं गई है, इसलिए उनके गीतों में विभिन्न मानवीय जन कठिन जीवन जीते हुए भी अपनी मानवीयता की रक्षा करता है। विचारधारा की सारी लड़ाई समाज को सचमुच मानवीय बनाने की ही लड़ाई है। इसलिए जन-जीवन में जीवित मानवीयता की रक्षा और उसके महत्व की पहचान कविता का दायित्व है।

शांति सुमन एक सजग और सचेत नारी की दृष्टि से समाज, जन-जीवन और उसके यथार्थ को देखती हैं। इस समाज में नारी स्वयं तरह-तरह के शोषण और उत्पीड़न का शिकार है, इसलिए शोषित और उत्पीड़ित जन से उसकी सहज एकता स्वाभाविक है। अगर वह जागरुक और पक्षधर दृष्टि की हुई तो शोषित-पीड़ित जन से उसकी एकता अधिक गहरी होगी और सहानुभूति सच्ची। शांति सुमन के गीतों में ऐसी एकता और सहानुभूति है। जिन गीतों में इस एकता और सहानुभूति की कलात्मक अभिव्यक्ति है उन्हीं गीतों में **शांति सुमन** की प्रगति-प्रतिभा की शक्ति प्रकट हुई है। इन गीतों में क्रांतिकारी करुणा है, ऐसी करुणा जो शोषित-पीड़ित जन के लिए ममता बनती है और शोषक सत्ता के विरुद्ध आक्रामक प्रतिहिंसा।

शांति सुमन प्रायः समाज की वास्तविकताओं और जीवन के अनुभवों के बारे में बयान या व्याख्यान नहीं देतीं, वे चित्रों और संकेतों में अपनी बात कहती हैं। उनकी इस कला में बिम्बों, प्रतीकों और संकेतों के सहारे अर्थ का विस्तार होता है लेकिन गीत सहजता की जमीन पर रहते हैं, क्योंकि बिम्ब, प्रतीक और संकेत जन-जीवन से आते हैं और उसी जीवन की भाषा तथा मुहावरों में रचे-बसे होते हैं।

गीतों के केन्द्र में बिहार के किसान-मजदूर : डॉ. वशिष्ठ अनूप

डॉ. शान्ति सुमन एक ऐसी कवयित्री हैं जिन्होंने स्वतःस्फूर्त भावुकता को काव्य का विषय न बनाकर जीवन की मूलभूत समस्याओं और शोषक-शोषित वर्ग के बीच के टकरावों एवं संघर्षों को अपने गीतों में अभिव्यक्ति दी है। उन्होंने नवगीत से लेकर जनगीत और जनवादी गीत तक की सार्थक और महत्वपूर्ण काव्य-यात्रा की है। आरम्भिक दौर में लिखे गये उनके गीत भी सीमाओं का अतिक्रमण करते रहे।

शान्ति सुमन ने समाज, साहित्य, गीत, लय, छन्द, भाषा, बिम्ब, प्रतीक, विचार और कला आदि पर गंभीरता से चिन्तन किया है। वह ढुलमुल रचनाकारों की भाँति साहित्य में राजनीति का विरोध नहीं करतीं, किन्तु राजनीतिक विचारों की कलात्मक अभिव्यक्ति को जरूर मानती हैं।

जिस प्रकार महाश्वेता देवी के कथा-साहित्य का केन्द्रीय विषय आदिवासी समाज है, उसी प्रकार **शान्ति सुमन** के गीतों के केन्द्र में बिहार के किसान-मजदूर और विशेषकर खेतिहर-मजदूर हैं। ये वे मजदूर हैं जो दिन-रात अपना खून-पसीना बहाकर धरती को उर्वर बनाते हैं और अन्न उगाते हैं, किन्तु स्वयं अन्न के एक-एक दाने के लिये तरसते-तड़पते हैं, जिनके रोटी, कपड़ा और झोपड़ी के सपने भी सपने ही रह जाते हैं।

शान्ति सुमन/आत्म परिचय

जन्म - अनंत चतुर्दशी 1944, **शिक्षा** - एम.ए. पी.एच.डी., **प्रकाशित** - **गीत संग्रह** - 'ओ प्रतीक्षित'-'70,'परछाई टूटती'-'78, 'सुलगते पसीने'-'79, 'पसीने के रिश्ते'-'80, 'मौसम हुआ कबीर'-'85, 'तप रहे कचनार'-'97, 'भीतर-भीतर आग'-'02, 'पंख-पंख आसमान'-'04 (चुने हुये एक सौ एक गीतों का संग्रह), 'एक सूर्य रोटी पर'-'06, 'धूप रंगे दिन'-'07, 'नागकेसर हवा'-'11, 'मेघ इन्द्रनील'-'91, (मैथिली गीतों का संग्रह), 'लय हरापन की'-2015, 'लाल टहनी पर अड़हुल'-2016, **कविता-संग्रह** - 'समय चेतावनी नहीं देता'-'94, 'सूखती नहीं वह नदी'-'09, **उपन्यास** - 'जल झुका हिरन'-'78, **आलोचना** - 'मध्यवर्गीय चेतना और हिन्दी का आधुनिक काव्य'-'93, **सम्पादन** - 'सर्जना', 'अन्यथा' (मुजफ्फरपुर), 'भारतीय साहित्य', 'कन्टेम्परी इंडियन लिटरेचर' (दिल्ली), 'बीज' (पटना), देश-विदेश की प्रमुख पत्र-पत्रिकाओं में रचनायें प्रकाशित। देश के विभिन्न आकाशवाणी एवं दूरदर्शन केन्द्रों से गीतों की रिकार्डिंग एवं प्रसारण। गणतंत्र की पूर्व संध्या पर सर्वभाषा कवि सम्मेलन (दिल्ली) में तमिल कविता का हिन्दी में अनुवाद-पाठ। गणतंत्र की पूर्व संध्या पर सर्वभाषा कवि-सम्मेलन (दिल्ली) में संस्कृत कविता का हिन्दी में गीतात्मक अनुवाद। **"कामायनी"** का मैथिली में अनुवाद-2013 (साहित्य अकादमी), **सम्मान और पुरस्कार** - बिहार राष्ट्रभाषा परिषद् पटना से साहित्य-सेवा सम्मान से सम्मानित एवं पुरस्कृत, हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग से कविरत्न सम्मान, बिहार सरकार के राजभाषा विभाग द्वारा महादेवी वर्मा सम्मान से सम्मानित एवं पुरस्कृत, अवन्तिका (दिल्ली) द्वारा विशिष्ट साहित्य-सम्मान, मैथिली साहित्य परिषद् से विद्यावाचस्पति सम्मान, हिन्दी प्रगति समिति द्वारा भारतेन्दु सम्मान। इनके अतिरिक्त नारी सशक्तीकरण के उपलक्ष्य में सुरंगमा सम्मान एवं विन्ध्य प्रदेश से साहित्यमणि सम्मान। हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग से 'साहित्य भारती' का सम्मान (2005) तथा उत्तर प्रदेश हिन्दी संस्थान द्वारा 'सौहार्द सम्मान" (2006) से सम्मानित एवं पुरस्कृत। **आलोचकीय मूल्यांकन** - शान्ति सुमन के गीत एवं उनकी गीतधर्मिता का अध्ययन-विश्लेषण करते हुए पाठकों, समीक्षकों एवं विद्वान आलोचकों के आलेखों की दो पुस्तकें प्रकाशित - 1. **'शान्ति सुमन की गीत-रचना और दृष्टि'**-सम्पादक-दिनेश्वर प्रसाद सिंह 'दिनेश' 2. **'शान्ति सुमन की गीत-रचना : सौन्दर्य और शिल्प'**- सम्पादक डॉ. चेतना वर्मा **विशेष** - पूर्व अध्यक्ष, हिन्दी विभाग, महन्त दर्शनदास महिला महाविद्यालय, मुजफ्फरपुर (बी.आर.ए.बिहार विश्वविद्यालय की अंगीभूत ईकाई) **सम्प्रति**- स्वतंत्र रचना-कर्म, **स्थायी संपर्क** - मीठनपुरा, वी.सी.गली- क्लब रोड, रमना मुजफ्फरपुर-842002 (बिहार), **वर्तमान सम्पर्क** - डॉ. शान्ति सुमन, 2, कैजर बंगला, कपाली रोड, (कदमा सोनारी लिंक) कदमा, जमशेदपुर-831005, झारखण्ड, मो. नं. 9430917356

समीक्षा प्रकाशन
दिल्ली/मुजफ्फरपुर

Rs.250.00
9789386181077